महापंडितकविजगन्नाथविरचितं,

श्रीचतुर्विंशतिसंधानम्

(श्लोकैकमात्रं)

संस्कृत–हिन्दी–टीका–द्वय–समेतम्.

संस्कृतटीका स्वयं श्रीजगन्नाथेन कृता.

हिन्दी टीका धर्मरत्नोपाव्हेन

श्रीलालाराम शास्त्रिणा निर्मिता.

वीराब्द २४५५, वि० सं० १९८५.

वैशाखशुद्ध ३.

प्रकाशकः—गांधी नाथारंगजी, सोलापूर.

मुद्रकः—वंशीधर उदयराज पंडित.

श्रीधर प्रेस, भवानी पेठ, सोलापुर.

प्रास्ताविक दो शब्द.

चतुर्विंशति संधान—यह एक श्लोकमें चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति है। श्रीजगन्नाथ नामके महापंडित, भट्टारक नरेंद्रकीर्तिके शिष्य थे और कवि थे। उन्होंने अपना समय अंतमें १६९९ संवत दिया है। उन्हींने यह श्लोक बनाया है और उन्हींने उसके पच्चीस अर्थ किये हैं। चौवीस अर्थोंमें क्रमसे एक एक तीर्थंकर की स्तुति है और पच्चीसवीं व्याख्यामें समुदायरूप चौवीसो तीर्थंकरकी स्तुति दिखाई है।

टीकामें जो जुदे जुदे अर्थ निकाले हैं वे विद्वानोंको मनन करने योग्य हैं। कितनी ही जगह शब्दार्थ करनेकी आश्चर्यचकित करनेवाली विद्वत्ता दिखाई पडती है।

प्रत्येक व्याख्याका विशद अर्थ हिंदीमें धर्मरत्न श्रीमान् पं. लालारामजी शास्त्रीने किया है। आपने और भी कई ग्रन्थोंपर टीकाएं की हैं। इस हिंदी टीकाके कारण काव्य सर्व साधारणके भी उपयोगका हो गया है। सर्व साधारण भी इसे वांचकर पुण्य के भागी बनेंगे और आनंदको प्राप्त होंगे। हमने इसके कुछ अर्थ स्याद्वाद केसरीके पाठकोंको भी दिखाये हैं। यह वास्तवमें एक अपूर्व कविता है।

जगन्नाथ नामके एक अच्छे कवि हिंदुओंमें भी होगये हैं किंतु इन श्रीजगन्नाथ पण्डितकी यह कविता भी मननीय ही है।

इसका नाम चतुर्विंशतिसंधान है। परंतु अर्थ पच्चीस किये हैं। इसलिये चतुर्विंशतिसे भी एक अधिकसंख्यावाला पंचविंशति-संधान इसे कहें तो अयुक्ति न होगी। एक श्लोकके चौवीस अर्थ करना कोई साधारण बात नहीं है, इस बातको विद्वान् लोग सहज ही समझ सकते हैं।

सोलापुर जिलामें आकलूज ग्राम, वहांका ' गांधी नाथा रंगजी ' घराना धन और धर्म दोनो दृष्टिसे जैन समाज में सुविख्यात है। उन्हींमेंसे पानाचंद नाथाके चिरंजीव सेठ भाईचंद श्री शांतिसागर महाराजके दर्शनार्थ इस चातुर्मासके बाद गये थे। वहांपर इस ग्रंथकी संघमें जिक्र निकली और सेठ भाईचंदको भी मालूम हुआ कि यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। यह समझ इन्होंने इसे प्रकाशित करानेका वहींपर निश्चय कर लिया था। तदनुसार यह ग्रंथ नाथा रंगजी के घराने से प्रकाशित होरहा है।

सेठ नाथारंगजी वालोंने अनेक अपूर्व जैन ग्रंथोंका उद्धार कराया है, उसमें पचासों हजार रु० खर्च किया है। इसी प्रकार इस ग्रंथका प्रकाशन करके भी आज जैन साहित्यकी आपने एक सच्ची सेवा की है। आपके घरानेमेंसे लाखो रु० शिक्षण प्रचारके लिये जुदा निकाल दिया गया है और उसके द्वारा शिक्षण प्रचार व जैन साहित्यका प्रचार बराबर होरहा है; परंतु इसके सिवा इस कार्यके लिए इनके घरमेंसे और भी नवीन नवीन रुपया प्रतिवर्ष निकाला जाता है। यह उनकी दानशीलता इतर धनिकोंको अनुकरणीय है।

श्रीमान् पं. लालारामजी शास्त्री आज जैन समाजमें एक सुपरिचित विद्वान हैं। आपने अनेक ग्रंथ लिखकर जैन साहित्य की एक आदर्श सेवा की है। इसके अतिरिक्त आप सामाजिक धर्मरक्षाके कार्योंमें भी सदा दत्तचित्त रहते हैं। ऐसे नर रत्नोंसे ही दि० जैन समाजके धर्मकी सच्ची स्थिरता होरही है। इस नवीन वर्तमान पीढी में आपके अनुभव, धैर्य, समाज सेवा आदि अनेक गुण अवर्णनीय हैं।

श्रीमान् ब्रह्मचारी ज्ञानचंद्रजीकी इसको प्रकाशित करानेकी बलवती इच्छा थी. वे इसके प्रकाशित होजानेसे प्रसन्न होंगे ऐसी आशा है। जो जो त्यागियोंकी इच्छा होती है उसे ही धर्म समझना चाहिये और अत एव उसके अनुसार प्रवृत्ति करना ही श्रावकोंका वैयावृत्त्य वा साधुसेवा है। यह श्रावकोंका एक मुख्य कर्म है। जिन्हे श्रीशांतिसागर महाराजकी भी प्रत्यक्ष सेवा नहीं बनती वे यदि साधुओंकी इच्छा पूर्ण करनेकी भावना रक्खें तो वे भी इसी प्रकार पुण्यका संचय कर सकते हैं।

सोलापुर. ता० १२।५।१९२९ } वंशीधर उदयराज पंडित. मा० श्रीधरप्रेस

विषयानुक्रम.

विषय.	पृष्ठ
आद्य वक्तव्य.	१
१ श्री वृषभजिनस्तुति.	२
२ श्री अजितनाथस्तुति.	१०
३ श्री शंभवनाथस्तुति.	१७
४ श्री अभिनंदननाथस्तुति.	२४
५ श्री सुमतिनाथस्तुति.	३०
६ श्री पद्मप्रभस्तुति.	३४
७ श्री सुपार्श्वनाथस्तुति.	३९
८ श्री चन्द्रप्रभस्तुति.	४४
९ श्री पुष्पदन्तस्तुति.	५१
१० श्री शीतलनाथस्तुति.	५५
११ श्री श्रेयांसनाथस्तुति.	६०
१२ श्री वासुपुज्यस्तुति.	६४
१३ श्री विमलनाथस्तुति.	६९
१४ श्री अनंतनाथस्तुति.	७४
१५ श्री धर्मनाथस्तुति.	७८
१६ श्री शांतिनाथस्तुति.	८२
१७ श्री कुंथुनाथस्तुति.	८८
१८ श्री अरनाथस्तुति.	९५
१९ श्री मल्लिनाथस्तुति.	१०२
२० श्री मुनिसुव्रतजिनस्तुति.	१०८
२१ श्री नमिनाथस्तुति.	११८
२२ श्री नेमिनाथस्तुति.	१२५
२३ श्री पार्श्वनाथस्तुति.	१३२
२४ श्री वर्धमानस्तुति.	१४०
२५ समुदित चतुर्विंशतिजिनस्तुति.	१४७
अंत्य वक्तव्य.	१५१

ओं नमः सिद्धेभ्यः

कविवर पण्डित जगन्नाथकृतं

श्री चतुर्विंशतिसंधानं.

स्रग्धरा छंदः

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाङ्कोऽथधर्मो,
हर्य्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥ १ ॥

टीकाकारका मंगलाचरण।

प्रणम्यांघ्रियुग्मं जिनानां जिनानां जगन्नाथपूज्यांघ्रिपाथोरुहाणाम्।
वरैकाक्षरार्थैर्महायुक्तियुक्तैः सुवृत्तिं च तेषां नुतेश्चर्करीमि ॥ १ ॥

अर्थ—भट्टारक श्रीनरेन्द्रकीर्तिके मुख्य शिष्य सुप्रसिद्ध कविराज जगन्नाथ भी जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं अथवा इन्द्र चक्रवर्ती आदि जगतके स्वामी कहलानेवाले सौ इन्द्र भी जिनके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो घातिया कर्मोंको सर्वथा नाश करदेनेवाले हैं ऐसे भगवान् श्री जिनेन्द्र देवके चरणकमलोंको नमस्कार कर मैं पण्डित जगन्नाथ अनेक युक्तियोंसे परिपूर्ण ऐसे एक एक अक्षरके उत्तम उत्तम सुन्दर अर्थोंसे उन्हीं अरहंत देवकी की हुई स्तुतिकी टीका करता हूं।

वाग्देवतायाश्चरणांबुजद्वयं स्मरामि शब्दांबुधिपारदं वरम्।
यन्नाममात्रस्मरणोत्थयुक्तयो हरंत्यघं कोविदमानसानि ॥ २ ॥

अर्थ—भगवान् अरहंत देवकी दिव्य ध्वनिसे उत्पन्न हुई सरस्वती के दोनों चरणकमल संसारमें सबसे उत्तम हैं और शास्त्ररूपी महासागर से पार करदेने वाले हैं। तथा जिनके नाममात्र के ही स्मरण करनेसे उत्पन्न हुई युक्तियां विद्वानों के मनको हरण कर लेती हैं और समस्त

पापों का नाश करदेती हैं ऐसे सरस्वती देवी के उन दोनों चरण-कमलों को मैं स्मरण करता हूं।

अप्रसिद्धनिनादेषु नात्र कार्या विचारणा
एकाक्षरसुकोषस्य पद्यं दृष्ट्वावगम्यताम् ॥ ३ ॥

अर्थ—इस स्तुतिमें जो अप्रसिद्ध शब्द आये हैं उनपर कुछ विचार नहीं करना चाहिये। किंतु एकाक्षर कोशके पद्योंको देखकर उनका निश्चय कर लेना चाहिये।

पद्यस्य यस्य कस्यापि वाच्ययुग्मं हि चित्रकृत् ।
चतुर्विंशतिसद्वाच्यैरेतत्कुर्वीत किं न शम् ॥४॥ इति प्रस्तावना।

अर्थ—जिस किसी पद्यके वाच्य वा अर्थ दो होते हैं वे भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले होते हैं। फिर भला इस पद्यके तो चौबीस वाच्य हैं। उन चौबीसों अर्थोंसे सुशोभित यह पद्य मनुष्योंको आनंद उत्पन्न क्यों नहीं करेगा ? अवश्य करेगा।

चतुर्विंशतिजिनानामेकपद्यं कृत्वा तस्य चतुर्विंशतिभिरर्थैर्जगन्नाथस्तान् स्तौतीति तावदादिजिनस्य वृषभस्य स्तुतिः। तथाहि असौ लोकोत्तरवृषभजिनपतिः वृषभश्चासौ जिनपतिश्च वृषभजिनपतिः यद्वा वृषेण बलीवर्देन भातीति वृषभः वृषांकत्वात्। स चासौ जिनपतिः श्रीनाभेयो युगादिदेवः मां जगन्नाथ-नामानं सेवकं अं अंगीकृत्य अवतु रक्षतु। कस्मादाजवंजवभयादित्यध्याहारः। किंविशिष्टो वृषभजिनपतिः श्रेयान् सर्वेषु श्रेष्ठः “ श्रेयान श्रेष्ठः पुष्कलः स्यादित्यमरः ” पुनः किंलक्षणः श्रीवासुपूज्यः श्रेयोपलक्षितैः वासुभिरिन्द्रैः पूज्यः श्रीवासुपूज्यः तेषां महाभाग्यत्वात्। एतेन जन्मकल्याणं सूचितम्। मुहुः श्रीद्रुमांकः श्रीद्रुमो नाम दक्षिणस्तनस्योपरि शुभलांछनविशेषः। श्रीद्रुमस्य श्रीवृक्षस्यांको यस्य स श्रीद्रुमांकः। इदं हि भाग्यवतां भवेत्। वचनं हि “ तेन श्रीवृक्षमात्रेण किंचिदालक्षितोदयः ” इति। मुहुः अथवर्मः– “ हेतौ निदर्शने प्रश्ने स्तुतौ कंठसमीकृतौ। आनंतर्ये-

धिकारस्थे मांगल्ये वाथ दृश्यते " धनंजयभट्टः । आनंतर्ये चतुर्थकालादौ धर्मः युगलधर्मं विनिवार्य जनान् शुभमार्गे धरति धर्मः । अथवा जनान् कृष्यादिषु कर्मसु धरति धर्मः । उक्तं हि— "प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः ।" इति । पुनः हर्यंकः हरिर्भरताभिधो ज्येष्ठपुत्रः अंके उत्संगे यस्य स हर्यंकः । " उत्संगचिन्हयोरंकः " इत्यमरः । भूयः पुष्पदंतः प्रसूतदशनः संख्यासुपूर्वत्वाभावाद्वयसि दंतस्य दतृ इति सूत्रेण दत्रादेशो न स्यात् । पुनः मुनिसुव्रतजिनः । मुनयश्चारित्रभृतः, सुव्रताः श्रावकाः, जिना वृषभसेनादिचतुरशीतिगणधरा यस्य स मुनिसुव्रतजिनः । एतेन समवसरणविभूतिरुक्ता । पुनः अनंतवाक् अनंता नाशरहिता वाग्वाणी यस्य सोनंतवाक् । पुनः श्रीसुपार्श्वः श्रिया शोभनौ पार्श्वौ यस्य स श्रीसुपार्श्वः । पुनः शांतिः सेवक-जनानां दुःखं शातयति शांतिः । पुनः पद्मप्रभः पद्यते मा यत्र तत्पद्मं हिरण्यं । पद्मस्य प्रभा इव प्रभा यस्य स पद्मप्रभः सुवर्णवर्णः । पुनः रः गंभीरध्वनिमान् । मत्त्वर्थीयो अकारः । मुहुः विमलविभुः विमलानां गतकर्ममलानां पुरंदरधरणेंद्रचक्रेंद्रादीनां विभुः विम-लविभुः । अपिः संभावनायां । भूयः वर्द्धमानः । जन्ममृत्युविस्रसा-रहितत्वाद्वर्द्धतेसौ वर्द्धमानः एधमानः । पुनः अजांकः अजाः शास्वता अंकाः चिन्हानि अनंतज्ञानादयो यस्य सोऽजांकः । भूयः मल्लिः मलते आत्मानं विषयादिषु धारयति यत् तन्मलं द्रव्यकर्म-पिंडः । तस्य लिर्नाशो यस्मादिति मल्लिः । मलु मल्ल धारणे । अथवा मलकर्मतापन्नं लवयति द्रवीकरोति इति मल्लिः । ली द्रवीकरणे । पुनः नेमिः युगादौ धर्मरथप्रवर्तकत्वान्नेमिरिव नेमिः । नहि नेमिमन्त-रेण रथो याति । मुहुः नमिः नास्ति मिः हिंसा यस्य स नमिः " हिंसा मा मीर्मियौ मियः " नञ्प्रतिरूपकोयं नकारः । तेन नलोपो नञ इति न भवति । दयाधर्ममयत्वाद्यस्य मतेपि हिंसा नास्ति । पुनः सुमतिः शोभना रत्नत्रययुता जनानां मति-

यस्मादिति सुमतिः। पुनः श्रीजगन्नाथधीः श्रीजगन्नाथैः श्रीजगदीश्वरैर्ध्यायते चिन्त्यते इति श्रीजगन्नाथधीः। भगवद्गुणा अस्माकमपि भवंत्विति चिंतावंतः। पुनः सत् विद्यमानः। 'सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेभ्यर्हिते च सत्' इत्यमरः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्तिमुख्यशिष्यपंडितजगन्नाथविरचितायां प्रथमतीर्थंकर-श्रीवृषभनाथस्तुतिः सम्पूर्णा।

श्रीयुत विद्वद्वर पं. जगन्नाथजी चौवीसों तीर्थंकरोंकी स्तुति करनेके लिये एक श्लोक बनाकर तथा उसके चौवीस अर्थ करके चौवीसों तीर्थंकरकी स्तुति करते हैं। उनमें सबसे पहले प्रथम तीर्थंकर श्रीवृषभनाथकी स्तुति करते हैं।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो हर्यंकः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः। शान्तिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्धमानोप्यजांको मल्लिर्नेमिर्नमि र्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

अन्वय—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः रः विमलविभुः वर्द्धमानः अजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः श्रीजगन्नाथधीः सत् अपि असौ वृषभजिनपतिः मां अं अवतु आजवंजवभयादिति शेषः।

अर्थ— जो भगवान् वृषभदेव स्वामी श्रेयान् हैं। श्रेयान्का अर्थ श्रेष्ठ है। अमरकोषमें लिखा भी है "श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्" अर्थात् श्रेयान् श्रेष्ठ और पुष्कल सबका एक अर्थ है। भगवान् वृषभदेव भी सबमें श्रेष्ठ हैं इसलिये वे श्रेयान् कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्री का अर्थ लक्ष्मी है वासुका अर्थ इन्द्र है और पूज्यका अर्थ पूजनीय है। जो स्वर्गकी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाले इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। भगवान् वृषभदेव भी महाभाग्यशाली

हैं उनके जन्मकल्याणके समय इंद्रोंने आकर बडे महोत्सवके साथ मेरु पर्वतपर अभिषेक किया था इसलिये वे श्रीवासुपूज्य कहलाते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। श्रीद्रुमका अर्थ श्रीवत्स है। भाग्यशाली पुरुषोंके दाहिनी ओर स्तनके ऊपर एक विशेष चिन्ह होता है उसको श्रीवत्स लक्षण कहते हैं। अंक शब्दका अर्थ चिन्ह है। जिनके श्रीद्रुम अर्थात् श्रीवत्सका अंक अर्थात् चिन्ह हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। यह चिन्ह महा भाग्यशालियोंके होता है। लिखा भी है "तेन **श्रीवृक्षमात्रेण किंचिदालक्षितोदयः**" अर्थात् उस श्रीवत्स चिन्हसे उनका उदय कुछ और ही प्रकारका दिखाई पडता था। अर्थात् उनका भाग्योदय संसारमें सबसे अपूर्व और उत्तम जान पडता था। भगवान् वृषभदेव भी उस चिन्हसे सुशोभित हैं इसलिये वे श्रीद्रुमांक कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अथधर्म हैं। अथ शब्दका अर्थ अनंतर है धनंजय भट्टने लिखा भी है "हेतौ निदर्शने प्रश्ने स्तुतौ कंठसमीकृतौ। आनंतर्येधिकारस्थे मांगल्ये चाथ दृश्यते" अर्थात् हेतु उदाहरण प्रश्न स्तुति कंठके पास आना अनंतर अधिकार और मंगल ये सब अथ शब्दके अर्थ हैं। जो शुभ मार्गमें—मोक्षमार्गमें धारण करे उसको धर्म कहते हैं। भगवान् वृषभदेवने भोगभूमिके अनंतर चौथे कालके प्रारंभमें युगलिया धर्मको दूर कर लोगोंको मोक्षमार्गमें लगाया था इसलिये वे अथधर्म कहे जाते हैं। अथवा भगवान् वृषभदेवने चौथे कालके प्रारंभमें खेती व्यापार आदि जीविकाके छह कर्मोंमें लोगोंको लगाया था इसलिये वे अथधर्म कहलाते हैं। श्रीसमंतभद्राचार्यने लिखा भी है "**प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः**" अर्थात्—भगवान् वृषभदेवने सबसे पहले प्रजाको खेती व्यापार आदि जीविकाके उपायभूत छह कर्मोंका उपदेश दिया था। इसीलिये वे भगवान् अथधर्म कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। भगवान् वृषभदेवके ज्येष्ठ पुत्र भरतका नाम हरि है। अंक शब्दका अर्थ गोद है। अमर कोषमें लिखा

भी है "उत्संगचिन्हयोरंकः" अर्थात् अंक शब्दका अर्थ गोद और चिन्ह है। जिनकी गोदमें भरत हों उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान् वृषभदेवने भी गोदमें लेकर भरतको खिलाया था इस लिये वे हर्यंक कहलाते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदंत हैं। पुष्प शब्दका अर्थ फूल है और दंत शब्दका अर्थ दांत है। जिनके दांत सफेद फूलोंके समान सुंदर हों उनको पुष्पदंत कहते हैं। भगवान्‌के दांत भी ऐसे ही हैं इसलिये वे पुष्पदंत कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रत-जिन हैं। पूर्ण चारित्रको धारण करनेवाले साधुओंको मुनि कहते हैं। अणुव्रत आदि उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले श्रावकोंको सुव्रत कहते हैं। तथा कर्मोंको जीतनेवाले गणधरोंको जिन कहते हैं। जिनके समवसरणमें मुनि भी हों श्रावक भी हों और गणधर भी हों उनको मुनिसुवृतजिन कहते हैं। भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें मुनि भी थे श्रावक भी थे और वृषभसेन आदि चौरासी गणधर थे इसीलिये वे मुनिसुवृतजिन कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। जिसका कभी नाश न हो उसको अनन्त कहते हैं। वाक् वा वाणी दिव्य ध्वनि को कहते हैं। भगवान् वृषभ देवकी दिव्य ध्वनिमें कहे हुए मोक्षमार्गका कभी नाश नहीं होता—उनकी वाणी परंपरा रूपसे ज्यों की त्यों बनी रहती है इसलिये उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर वे भगवान श्रीसुपार्श्व हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं और पार्श्व शब्दका अर्थ अगल बगल वा दांई वांई ओरका भाग है। भगवान् वृषभदेवके दांई वांई ओरके भाग शोभासे सुशोभित हैं अथवा उनके चारों ओरका समवसरणका भाग लक्ष्मीसे सुशोभित है इसलिये उनको श्री-सुपार्श्वनाथ कहते हैं। फिर वे भगवान शांति हैं। जो सेवक लोगोंके दुःखोंको दूर करें उनको शांति कहते हैं। भगवान्‌की भक्तिसे भी भव्य जीवोंके दुःख दूर होजाते हैं इसलिये उनको शांति कहते हैं। फिर वे भगवान् पद्मप्रभ हैं। पद् शब्दका अर्थ प्राप्त होना है। माका अर्थ लक्ष्मी है। जिसमें मा अर्थात् लक्ष्मी पद्-प्राप्त हो उसको

पद्म कहते हैं। लक्ष्मी सुवर्णमें रहती है इसलिये सुवर्णको पद्म कहते हैं। प्रभा शब्दका अर्थ कांति है। जिनकी प्रभा वा कांति पद्म अर्थात् सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान्‌के शरीरकी कांति भी सुवर्णके समान है इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् र हैं। र शब्दका अर्थ गंभीर ध्वनि है। जिनकी ध्वनि गंभीर हो उनको भी र कहते हैं! (र शब्दसे अ प्रत्यय होकर ऐसा अर्थ होता है) भगवान् की दिव्यध्वनि भी अत्यंत गंभीर है इसलिये वे र कहलाते हैं। फिर वे भगवान् विमलविभु हैं। अशुभ कर्मोंको मल कहते हैं। जो अशुभ कर्मोंसे रहित हों ऐसे इन्द्र धरणेंद्र और चक्रवर्ती आदिको विमल कहते हैं। विभु स्वामीको कहते हैं। भगवान् भी इन्द्रादि सबके स्वामी हैं इसलिए उनको बिमलविभु कहते हैं। फिर वे भगवान् वर्द्धमान हैं। जो स्वभावसे ही जन्म मरणसे रहित होकर बढते रहें उनको वर्द्धमान कहते हैं। भगवान् भी जन्म मरणसे रहित हैं और अपने गुणोंसे सदा बढते रहते हैं इसलिए वे वर्द्धमान कहलाते हैं। फिर वे भगवान् अजांक हैं। जो कभी उत्पन्न वा नष्ट न हो उसको अज कहते हैं। अंक शब्दका अर्थ चिन्ह है। जिनके चिन्ह कभी उत्पन्न नष्ट न हों उनको अजांक कहते हैं। भगवान् वृषभदेवके केवल-ज्ञान आदि अनंत चतुष्टयरूप चिन्ह सदा ज्यों के त्यों बने रहते हैं इसलिए उनको अजांक कहते हैं। फिर वे भगवान् मल्लि हैं। मल धातुका अर्थ धारण करना है। जो आत्माको विषयादिकोंमें धारण कर देवे–लगा देवे उसको मल कहते हैं। यह आत्मा कर्मोंके उदयसे विषयोंमें लगाना है इसलिये कर्मोंके समूहको मल् कहते हैं। लिशब्दका अर्थ नाश करना है। जो मल् अर्थात् कर्मोंके समूहको लि अर्थात नाश करें उनको मल्लि कहते हैं। भगवानने भी सब कर्मोंका नाश कर दिया है इसलिये उनको मल्लि कहते हैं। अथवा लि धातुका अर्थ द्रव करना–नरम करना है। जो कर्मोंके समूहको नरम कर देवें

तपश्चरणरूपी अग्निसे पिघलाकर नष्ट कर देवें उनको मल्लि कहते हैं। भगवान्‌ने भी तपश्चरण के द्वारा सब कर्मोंको नष्ट कर दिया है इसलिये उनको मल्लि कहते हैं। फिर वे भगवान् नेमि हैं। जिनके सहारे पहिये चलते हैं ऐसे रथके धुरोंको नेमि कहते हैं। धुरेके विना कभी रथ चल नहीं सकता है। इसी प्रकार भगवान् वृषभदेव कर्मभूमिके प्रारंभ में धर्मरूपी रथको चलानेके लिये नेमि अर्थात् धुरके समान थे इसलिये उनको नेमि कहते हैं। फिर वे भगवान् नमि हैं। न का अर्थ नहीं है और मिका अर्थ हिंसा है। लिखा भी है " हिंसा मा मी मियौ मियः " अर्थात् मा मि मी ये सब हिंसा के वाचक हैं। जिनके मि अर्थात् हिंसा न अर्थात् न हो उनको नमि कहते हैं। भगवान् वृषभदेवका कहा हुआ मत दया-धर्मरूप है। इसलिये उनके मतमें हिंसा नहीं है इसीलिये वे नमि कहलाते हैं। फिर वे भगवान् सुमति हैं। मति शब्दका अर्थ बुद्धि वा ज्ञान है। सु शब्दका सुशोभित है। जिनसे लोगोंकी बुद्धि सुशोभित हो उनको सुमति कहते हैं। भगवान् के प्रभाव से भी लोगोंकी बुद्धि रत्नत्रयसे सुशोभित हो जाती है इसलिये उनको सुमति कहते हैं। फिर वे भगवान् श्रीजगन्नाथधी हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं। जो तीनों लोकोंके नाथ हों उनको जगन्नाथ कहते हैं। इन्द्र स्वर्गका स्वामी है। चक्रवर्ति मध्यलोक का स्वामी है और धरणेंद्र अधोलोकका स्वामी है। ये तीनों ही अपनी अपनी लक्ष्मीसे सुशोभित हैं। तथा धी शब्दका अर्थ चिंतवन करना है। अपनी अपनी लक्ष्मीसे सुशोभित होने वाले इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती आदि सब भगवान् वृषभदेवका चिंतवन करते हैं और चाहते हैं कि किसी भी प्रकार भगवान्‌के गुण हममें भी प्रगट हों। इसीलिये वे भगवान् श्रीजगन्नाथधी कहलाते हैं। अथवा तीनों लोकोंके सौ इन्द्र भी भगवानके गुणोंका चिंतवन करते हैं। अथवा तीनों लोकोंके स्वामी गणधरदेव भी भगवानके गुणोंको धारण करनेकी इच्छासे चिंतवन करते हैं। इसलिये वे भगवान् श्रीजगन्नाथधी कहे जाते हैं।

फिर वे भगवान सत् हैं। सत् शब्दका अर्थ विद्यमान वा नित्य है अथवा पूज्य है। लिखा भी है ' सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ' अर्थात् सत् शब्दका अर्थ सत्य, साधु विद्यमान, श्रेष्ठ और पूज्य है। भगवान् भी पूज्य और नित्य हैं इसलिये वे सत् कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् वृषभजिनपति कहलाते हैं। वृषका अर्थ धर्म है और भका अर्थ शोभायमान होना है। जो धर्मसे शोभायमान हो उनको वृषभ कहते हैं। तथा जो जिन अर्थात् गणधरदेवों के पति अर्थात् स्वामी हों उनको जिनपति कहते हैं। जो धर्मसे सुशोभित होते हुए भी गणधरादि महामुनियों के स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। अथवा वृषशब्दका अर्थ बैल है। जो बैलके चिन्हसे सुशोभित हों उनको वृषभ कहते हैं। तथा जिनपति तीर्थंकर को कहते हैं। जो बैलके चिन्हसे सुशोभित होते हुए तीर्थंकर पदको धारण करें उनको वृषभजिनपति कहते हैं। महाराजा नाभिराय के पुत्र और कर्मभूमिके प्रारंभमें होने वाले लोकोत्तर भगवान् वृषभदेव भी इन सब गुणोंसे सुशोभित हैं इसलिये वे वृषभजिनपति कहलाते हैं। ऐसे वे प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव स्वामी मुझ जगन्नाथ नामके सेवकको अं अर्थात् स्वीकार करके इस संसारके भयसे रक्षा करें।

इस प्रकार भट्टारक श्री नरेन्द्रकीर्तिके मुख्यशिष्य विद्वद्वर पंडित श्री जगन्नाथ-विरचित एकाक्षर प्रकाशिका नामकी श्री चौबीसों तीर्थंकरोंकी स्तुतिमें चावली (आगरा) निवासी लालाराम शास्त्री (धर्मरत्न) द्वारा विरचित भाषाटीका में प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभदेवकी स्तुति समाप्त हुई। तथा काव्यका पहला अर्थ समाप्त हुआ।

अथ द्वितीय श्री अजितनाथजिनस्य स्तुतिः

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—असौ हर्यंकः हरिर्गजोऽके यस्य स हर्यंकः श्रीमदजितनाथो द्वितीर्यजिनराट् । "सिंहे श्वभकपिप्लवेहिगरुडे कीरांशुलोकांतरे, चंद्रादित्यहुताशवातगिरिशश्रीश्रीधरेंद्र गृहे । शुक्रेसौ यमराजवेशवरुणे स्वर्णेशनौ पारदे एतेष्वेव विभाति भेकहरिते वाच्यो हरिर्वाच्यवत् ।" हरिशब्दस्त्वेतेष्वर्थेषु प्रवर्तमानः । स हर्यंकः । मां श्रीजगन्नाथधीरं श्रीजगन्नाथनामानं पण्डितमवतादिति संबंधः । किंविशेषणगोचरो हर्यंकः, श्रेयान् कर्मारिभिरजितत्वान्नितरां प्रशस्यः । "सदक्षराजराजित प्रभो दयस्व वर्द्धनः" इति जिनशते । पुनः श्रीवासुपूज्यः श्रियं लक्ष्मीं वांति गच्छंति प्राप्नुवंति इति यावत् श्रीवाः । क्विप् चेति सूत्रेण क्विप् । श्रीवाः इंद्रादयः । श्रीवाभिः सुष्ठु पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । भूयः मुनिसुव्रतजिनः मुनिभिः ऋषिभिः सुव्रताः परिवृता जिना गणधरा यस्य स मुनिसुव्रतजिनः। मुहुः वृषभजिनपतिः वृषेण धर्मेण महाव्रतेन भांतीति वृषभास्ते च ते जिनाः सिंहसेनादयो नवतिगणराजस्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । यद्वा वृषभजिनपतिरिव वृषभजिनपतिः । तदनंतरत्वात् वर्णत्वात्सदृश इत्यर्थः । पुनः श्री द्रुमांकः । श्रीर्लक्ष्मीः, द्रुरशोको, मश्चंद्रः । श्रीश्च द्रुश्च मश्च श्रीद्रुमास्तेंके यस्य स श्रीद्रुमांकः । मुहुः । अथधर्मः थं स्तोकं च तद्धर्म थधर्म "थं स्तोकार्थे नपुंसकमिति"। न थधर्म यस्य सोथधर्मः तीर्थंकरपदाप्तिः "स्याद्धर्मस्त्रियामित्यमरः" 'धर्मादनि च केवलात्' इत्यनि च न स्यात् अकेवलत्वात् । उक्तं हि काशिकायां—परमः स्वधर्मो यस्य स परमस्वधर्म इति । मुहुः

पुष्पदंतः अष्टादशदोषरहितत्वात् पुष्यति पुष्टिं प्राप्नोति पुष्यत् । पुष्यत् अंतो धर्मः स्वभावो यस्य स पुष्पदंतः । "अंतः पदार्थसामीप्यधर्मसत्वव्यतीतिष्विति" धनंजयः । अन्यच्च जिनशतकालंकारे समंतभद्रैरुक्तं । 'नानानंतनुतांत' 'नाना अनेकप्रकारा अनंता अनूनाः अमेयाः नुताः स्तुताः अंता धर्मा यस्यासौ इत्यादि। अथवा पुष्यन् पुष्टिं प्रापन् अ परब्रह्म तनोति विस्तारयति पुष्पदंतः । अमांतो ब्रह्मसंवादे परब्रह्मप्रवाचक इति । उरगादयो बहुलमिति वचनाद् डः।उक्तं हि महाभाष्ये यत्र पदार्थससुच्छं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यमिति। भूयः अनंतवाक् अनंता अवसानरहिता वाचो यस्य सोनंतवाक् । ननु कथमनंतवागिति ज्ञानासंख्यभागेन ध्वनिस्तदसंख्यभागेन गणधरा विदुरिति ? सत्यम् । अस्मदादीनां सा त्वनंता एव ज्ञानावरणहानेः । पुनः श्रीसुपार्श्वः श्रिया स्वात्मोत्थतेजसा शोभनौ पार्श्वौ यस्य स श्रीसुपार्श्वः । समचतुरस्रत्वात् । "बाहुमूले उभे कक्षौ पार्श्वमस्त्री तयोरधः" इति । पार्श्वशब्दो बहुवचनांतोप्यस्ति । तदुक्तं द्विसंधानकृता तनूभृतां पार्श्व इवावतानिता इति । भूयः शांतिः शं सुखमंतावर्तिकं यस्य स शांतिः नामैकदेशो नाम्नि । उक्तं हि द्विसंधाने "केपि वृद्दिमकुलजाः समागता" इति । मुहुः पद्मप्रभः सुवर्णाभः। यद्वा पद्मानां सुररचितकनककमलानां प्रकृष्टा भा दीप्तिर्यस्मादिति पद्मप्रभः । मुहुः अरः नास्ति रै धनं यस्य सोरः निर्ग्रंथ इत्यर्थः । "रः सूर्येग्नौ धने कामे" । मुहुः विमलविभुः विनष्टं मलं कर्म येषां ते विमलाः सगरादयो महापुरुषास्तेषां विभुः । पुनः अवर्द्धमानः अवर्द्धमच्छिन्नं केवलज्ञानं यस्य स अवर्द्धमानः । अवाप्योरुपसर्गयोरित्यलोपः । अपिः संभावनायां । मुहुः अजांकः अजास्त्रिभुवनेश्वरा अंके यस्य सोजांकः । भूयः मल्लिः कर्मारिजेतृत्वान्महामल्लः । मुहुः नेमिः नयन्ति प्राप्नुवन्ति धर्मं पुष्टिं भव्यजना यस्मादिति नेमिः । उणादिको मिञ् । पुनः नमिः नास्ति मी

हिंसा एकेंद्रियादिषु यस्य स नमिः। पुनः सुमतिः शोभना मतिर्यस्य स सुमतिः। पुनः सत् शास्वतः जन्मादिरहितः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्यपंडितजगन्नाथकृतायां द्वितीय जिनराज श्रीअजितनाथस्य स्तुतिः काव्यार्थश्च पूर्णः। २।

आगे अजितनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शांतिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः अवर्धमानः अजांकः मल्लिः नेमिः सुमतिः सत् अपि असौ ह्यंकः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु।

अर्थ—जो श्री अजितनाथ स्वामी कर्मरूपी शत्रुओंसे कभी जीते नहीं जाते इसीलिये जो श्रेयान् अर्थात् प्रशंसनीय कहलाते हैं। श्रीसमन्तभद्रस्वामी विरचित जिनशतकालंकारमें लिखा भी है, "सदयराज राजित प्रभो दयस्व वर्द्धनः सतां तमो हरन् जयन् महोदयापराजितः।" अर्थात् "हे अजितदेव कर्मरूपी शत्रुओंने समस्त संसारको जीत लिया परंतु वे आपको न जीत सके इसलिये ही यह संसार आपको अजितदेव करके पुकारता है। हे प्रभो, आप विनाशरहित हैं, जरारहित हैं, भव्यजीवोंके अज्ञानरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं, वर्द्धमान दयालु और विजयी हैं। हे अजितदेव, जिसके प्रसादसे आप ऐसे हुए हैं वह सम्यग्ज्ञान मुझे भी दीजिये।" फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। वा धातुका अर्थ गमन करना वा प्राप्त होना है। जो श्री अर्थात् महा विभूतिको प्राप्त हों उनको श्रीवा कहते हैं। महाविभूति इन्द्रादिकोंके होती हैं इसलिये इंद्रादिक श्रीवा कहलाते हैं। जो इंद्रादिकोंके द्वारा पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। भगवान् अजितनाथ स्वामी इन्द्रादिकोंके द्वारा पूज्य हैं इसलिये वे श्रीवासुपूज्य हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। महाव्रतादिक धर्मको वृष कहते हैं। जो महाव्रतादिक धर्मसे शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं। गणधरादि देवोंको जिन कहते हैं। तथा पति स्वामीको कहते हैं। जो महाव्रतादिक धर्मसे सु-

शोभित होनेवाले गणधर देवोंके स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। भगवान् अजितनाथ भी सिंहसेन आदि ऐसे नव्वे गणधरोंके स्वामी हैं इसलिये वे वृषभजिनपति कहलाते हैं। अथवा भगवान् अजितनाथ स्वामी भगवान् ऋषभदेवके समान ही सुवर्ण वर्णके हैं इसलिये भी वे वृषभजिनपति कहलाते हैं। अथवा वे वृषभजिनपतिके अनंतर ही हुए हैं इसलिये भी वे वृषभजिनपतिके समान हैं अतएव वृषभजिनपति कहलाते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं। द्रु अशोक वृक्ष को कहते हैं। और म चंद्रमाको कहते हैं। जिनकी अंक अर्थात् सभामें लक्ष्मी अशोक वृक्ष और चंद्रमा हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् अजितदेवकी सभामें समवसरण-रूप महालक्ष्मी थी, अशोक वृक्ष था और ज्योतिषी देवोंका इन्द्र चंद्रमा सेवामें उपस्थित था इसलिए वे श्रीद्रुमांक कहे जाते हैं। फिर जो भगवान अथधर्म हैं। थ थोडेको कहते हैं। लिखा भी है 'थं स्तोकार्थे नपुंसकम्'। थ नपुंसकलिंग है और उसका अर्थ थोडा है। थोडे धर्मको थधर्म कहते हैं। जिनका धर्म थोडा न हो—महान् हो उनको अथधर्म कहते हैं। भगवान् अजितदेवको महान् धर्म तीर्थंकर पद प्राप्त था इसलिए वे अथधर्म कहलाते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। अठारह दोषोंसे रहित होकर जो पुष्टिको प्राप्त होते रहें उनको पुष्यत् कहते हैं। अंत शब्दका अर्थ धर्म है। धनंजय कोशमें लिखा है—अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्त्वव्यतीतिषु। अर्थात् अन्त शब्दका अर्थ पदार्थ समीप धर्म जीव और नाश है। और श्रीसमन्तभद्र स्वामीने जिनशतालंकारमें भी लिखा है—नानानंत-नुतान्त। अर्थात् जिनके अनेक प्रकारके अनंत अंत अर्थात् धर्म स्तुति करने योग्य हैं। जिनके अंत अर्थात् धर्म वा स्वभाव अठारह दोषोंसे रहित होकर सदा पुष्ट होते रहते हैं उनको पुष्पदंत कहते हैं। भगवान् अजितनाथ भी ऐसे हैं इसलिये वे पुष्पदंत कहलाते हैं। अथवा जो पुष्टिको प्राप्त हो उसको पुष्यत् कहते हैं। अ शब्दका अर्थ परब्रह्म

है। अमान्तो ब्रह्मसंवादे परब्रह्मप्रवाचकः। अर्थात् अका अर्थ परब्रह्म है। तथा ब्रह्मका वाचक है। जो पुष्टिको प्राप्त होते हुए परब्रह्मको और भी बढावे उसको पुष्पदंत कहते हैं। भगवान् अजितदेवने अपने शुद्ध परब्रह्म स्वरूप आत्माको समस्त कर्मोंका नाश कर और भी शुद्ध किया था इसलिये वे पुष्पदन्त कहे जाते हैं। फिर जो भगवान मुनिसुव्रत जिन हैं। साधुओं को मुनि कहते हैं। सुव्रत शब्दका अर्थ घिरा हुआ है। और जिनशब्दका अर्थ गणधर है। जिनके समवसरणमें जिन अर्थात् गणधर देव मुनियोंसे घिरे हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान् अजितनाथके समवसरणमें भी गणधरदेव अनेक मुनियोंके साथ विराजमान थे इसलिये उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनंतवाक् हैं। जिनकी वाणी अंतरहित हो उनको अनंतवाक् कहते हैं। भगवान् अजितदेवकी दिव्यध्वनि भी अनंत है इसलिये वे अनन्तवाक् कहलाते हैं। कदाचित् कोई यह कहे कि भगवान्का केवलज्ञान अनन्त ज्ञान कहलाता है। उसके असंख्यातवें भाग उनकी दिव्य ध्वनि खिरती है तथा उस दिव्यध्वनिका असंख्यातवां भाग गणधरों की समझमें आता है। फिर उनकी वाणीको अनंत किस प्रकार कह सकते हैं ? परंतु इसका समाधान यह है कि वाणी ज्ञान के अनुसार होती है। भगवान्के ज्ञानावरण कर्मका सर्वथा अभाव है इसलिये उनका ज्ञान भी अनंत ज्ञान है और उनकी वाणी भी अनंतवाणी है। वास्तवमें देखा जाय तो भगवान्का ज्ञान अनन्तानन्त है। यदि उनकी वाणी उसके अनन्तवें भाग मात्र भी हो तो भी वह अनन्तरूप ही कही जाती है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि वह वाणी हम लोगोंके ज्ञान की अपेक्षासे अनन्त है। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। भुजाओंके नीचे कांख और कांख के पास के भागको पार्श्व कहते हैं। भगवान् का शरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला होता है इस लिये उनके दोनो पार्श्वभाग बहुत ही सुंदर होते हैं तथा वे पार्श्वभाग आत्माके तेजसे सदा शोभमान रहते हैं इसीलिये वे भगवान् श्रीसुपार्श्व कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् शांति हैं।

शं सुखको कहते हैं और अंति अंतिक वा समीपको कहते हैं [यहां-पर अंति शब्द अंतिककेलिये आया है। किसी नामका एक भाग भी पूरे नामको बतलाता है।] जिनके समीप सब जीवोंको सुख प्राप्त हो उनको शांति कहते हैं। भगवान् अजितनाथके समीप भी सब जीवोंको सुख प्राप्त होता है इसलिये वे शांति कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। पद् प्राप्तिको कहते हैं। मा लक्ष्मीको कहते हैं। जिसमें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो उसको पद्म कहते हैं। सुवर्णमें लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है इसलिये सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनके शरीरकी कांति वा प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवानके शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी इसलिये वे पद्मप्रभ कहलाते हैं। अथवा विहार करते समय देव जो भगवान्‌के चरणकमलोंके नीचे सुवर्णमयी कमलोंकी रचना करते थे उनपर उत्तम कांति भगवान्‌के चरण कमलोंके निमित्तसे ही आती थी इसीलिये वे पद्मप्रभ कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। र का अर्थ धन है। लिखा भी है " रः सुर्येऽग्नौ धने कामे " अर्थात् र का अर्थ सूर्य अग्नि धन और काम है। जिनके पास कोई किसी प्रकारका धन वा परिग्रह नहीं है—सर्वथा निर्ग्रंथ हैं उनको अर कहते हैं। भगवान् अजितदेव भी चौबीसों प्रकारके अंतरंग बाह्य परिग्रहोंसे रहित हैं इसलिये वे अर हैं। तथा जो भगवान् विमलविभु हैं। जिनके कर्ममल नष्ट हो गये हैं ऐसे सगर चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंको विमल कहते हैं। भगवान् अजितदेव उन सगर चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंके स्वामी हैं इसलिये वे विमलविभु कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। जो कभी नाश न हो उसको अवर्ध कहते हैं। मानका अर्थ केवल ज्ञान है। जिनका केवल ज्ञान कभी नष्ट न हो—धारारूपसे सदा विद्यमान रहे उनको अवर्द्धमान कहते हैं। श्रीअजितनाथ भगवानका केवलज्ञान भी सदा विद्यमान रहता है इसलिये वे वर्द्धमान कहलाते हैं। यहांपर अवाप्योरुपसर्गयो: इस सूत्रसे अ का लोप हो गया है। फिर जो भगवान् अजांक

हैं। तीनों लोकोंके स्वामी केवली भगवान्‌को अज कहते हैं। जिनके अंक वा समीपमें केवलज्ञानी हों उनको अजांक कहते हैं। भगवान् अजितनाथके समवसरणमें भी केवलज्ञानी थे इसलिये वे अजांक कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् मल्लि हैं। उन्होंने कर्मरूप शत्रुओंको जीत लिया है इसलिये वे महा मल्ल अथवा मल्लि कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। भव्य जीव जिनसे धर्मकी पुष्टिको प्राप्त हों उनको नेमि कहते हैं। भगवान् अजितनाथसे भी अनेक भव्यजीव धर्म धारण कर मोक्ष पधारे हैं इसलिए वे नेमि कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। मि हिंसाको कहते हैं। जिनके मतमें एकेंद्रिय आदि सूक्ष्म जीवोंकी भी हिंसा नहीं है उनको नमि कहते हैं। भगवान् अजितनाथके मतमें भी हिंसा नहीं है। इसलिए वे नमि हैं। फिर वे भगवान् सुमति अर्थात् शोभायमान केवलज्ञानरूप ज्ञानको धारण करनेवाले हैं इसलिए वे सुमति कहलाते हैं। तथा जो भगवान् सत् अर्थात् सदा उसी अवस्थामें रहनेवाले हैं। जन्म मरणसे सर्वथा रहित है। तथा वे हर्यंक है। हरि अर्थात् हाथी और अंक अर्थात् चिन्ह। जिनके चरणकमलोंमें हाथीका चिन्ह है। ऐसे श्री अजितनाथ स्वामी द्वितीय तीर्थंकर मुझ जगन्नाथ नामके वीर अर्थात् पंडितको—ग्रंथके बनानेवाले श्री विद्वद्वर जगन्नाथ पंडितको इस संसारके भयसे रक्षा करो। अथवा मुझको और पंडितवर श्री जगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करो।

इति द्वितीयजिनस्तुतिः ॥

---

१ सिंहेऽश्वेभकपिप्लवेद्विगरुडे कीरांशुलोकांतरे,
चंद्रादित्यहुताशवातगिरिशश्रीश्रीधरेंद्रे गृहे।
शुक्रेसौ यमराजवेशवरुणे स्वर्णेशनौ पारदे,
एतेष्वेष विभाति भेकहरिते वाच्यो हरिर्विच्यवत् ॥

अर्थ—सिंह हाथी घोडा बंदर नाव गरुड तोता किरण मरण चन्द्रमा सूर्य अग्नि वायु धरणेंद्र घर शुक्र यमराज वेष वरुण सुवर्ण वज्र पारा मेंडक हरित इन सब अर्थोंमें हरि शब्द आता है।

अथ तृतीयतीर्थेशनुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोगेविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—असौ हर्यंकः हरिरश्वः अंके यस्य सः । इको यणचि इतियण् । अको रहाभ्यां द्वे इति द्वित्वमिति हर्य्यंकः श्रीशंभवनाथतृतीयतीर्थविधाता । "यमानिलेंद्रचंद्रार्कविष्णुसिंहाशुवाजिषु । शुकाहिकपिभेदेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु" इत्यमरः । स मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतादिति संबंधः । किंविशेषणगः ? श्रेयान् शरीरकांत्यातिशोभनः । मुहुः श्रीवासुपुज्यः श्रिया सत्यवचनलक्ष्म्योपलक्षिता वा वदनानि मुखानि येषां ते श्रीवाः सद्वादिनः सत्पुरुषाः "वंदने वदने वादे वेदनायां च वः स्त्रियाम्" "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" इति ह्रस्वः । श्रीवैरा समंतात् सुपूज्यः श्रीवासुपूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषेण षोडशभावनोद्भूतधर्मेण भाति वृषभः । जिनानां पतिः जिनपतिः वृषभश्चासौ जिनपतिश्च वृषभजिनपतिः । भूयः श्रीद्रुमांकः । श्रियोपलक्षितो द्रुर्वृक्षः श्रीद्रुरशोकवृक्षः । "पलासीद्रुद्रुमागमा" इत्यमरः । श्रीद्रोर्मा शोभा अंके यस्य स श्रीद्रुमांकः । अष्टप्रातिहार्येष्वशोकोपि । मुहुः अथधर्मः । नास्ति थो मिथ्यावाचको धर्मो यस्य सोथधर्मः । उभयनयाविरोधित्वात् । नास्ति थधर्मो यस्य सोथधर्म इति वा । तेन "धर्मादनिच् केवलात्" इत्यनिच् न स्यात् । पुनः पुष्पदंतः अपवर्गानंतसुखमहागहनक्रीडायां पुष्पदंत इव पुष्पदंतः दिग्गजसदृश इत्यर्थः । "ऐरावतः पुंडरीको वामनः कुमुदोंजनः । पुष्पदंतः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः" इति । तदुक्तं नेमिनिर्वाणकाव्ये ' करायतिन्यक्कृतपुष्पदंतः " इति । मुहुः मुनिसुतवृजिनः मुनिभिर्मतिश्रुतावधि-

मनःपर्ययावगमभृद्भिः सुवृताः परिवृता जिनाश्चारुषेणादयः पंचोत्तरशतं गणधरा यस्य : स मुनिसुवृतजिनः । मुहुः अनंतवाक् नास्ति अंतो यस्याः सा अनंता । अनंता वाग् वाणी यस्य सोनंतवाक् । "स्त्रियां पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ समानाधिकरणे स्त्रियां मयूरिणी प्रियादिषु " इति पुंवद्भावः । पुनः श्रीसुपार्श्वः श्रियः स्तंभप्रतोलिनिधिमार्गतडागवापिक्रीडाद्यादयः सुपार्श्वे यस्य स श्रीसुपार्श्वः । भूयः शांतिः शांतिकारी सर्वोपकारित्वात् । तदुक्तं स्वामिसमंतभद्रैः " त्वं शंभवः संभवतर्षरोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके । आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशांत्यै " इति । मुहुः पद्मप्रभोरोविमलविभुः पद्मप्रभाणि कमलप्रतीकाशानि निर्दंभत्वात् उरांसि हृदयाणि येषां ते पद्मप्रभोरसः निर्मलचेतस्का दयालवः ते च ते विमला इंद्रादय इति पद्मप्रभोरोविमलाः । तेषां विभुः पद्मप्रभोरोविमलविभुः । पुनः अवर्द्धमानः अव समंतात् ऋद्धं परिपूर्णं त्रिजगत्प्रकाशि मानं केवलज्ञानं यस्य स अवर्द्धमानः । पुनः अप्यजांकः । नास्ति पि भयं सप्तविधं येषां ते अपयः सप्तभयविप्रमुक्ताः इत्थंभूता अजा महामुनयस्तेऽके निकटे यस्य सोप्यजांकः । " पिः पुंसि पीडितारावे सागरे सोदरे दरे " इत्येकाक्षरे । भूयः मल्लिः मलां कर्मणां लिर्विच्छेदनं यस्मादिति मल्लिः । " लिः पुंसि लावः " इति । पुनः नेमिः । नानां नराणां इः कामस्तं मिनाति हिनस्ति नेमिः । उपलक्षणं कामक्रोधलोभमानमायादीनामपाकर्ता । " नो नरे च सनाथेपि " । भूयः नमिः नस्य नास्तिकत्वस्य मिथ्यात्वस्य मीर्निवारणं यस्मादसौ नमिः स्याच्छब्दबलात्कारतः । नस्येत्यत्र नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते इति वचनान्नास्तिकत्वाद्यर्थोऽवगम्यते । " बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः । स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोसि शास्ता " । अन्यच्च " स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् " इति व्यक्तं सर्वत्र । मुहुः

किंविशेषणगोचरः ? सुमतिः यस्मिन् भगवति श्रुते ध्याते वा दृष्टे स्तुते शोभना मिथ्यात्वरहिता भव्यजनानां मतयो यस्मादिति सुमतिः । पुनः सत् शास्वतः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्यजगन्नाथकृतायां श्रीशंभवनाथस्य तृतीयतीर्थविधातुः स्तुतिः संपूर्णा ।

आगे तृतीय तीर्थंकर श्रीसंभवनाथ भगवान्‌की स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुः अवर्द्धमानः अप्यजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत असौ हर्य्यंकः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु ।

अर्थ—जो श्रीसंभवनाथ स्वामी श्रेयान् अर्थात् शरीरकी कांतिसे अत्यंत शोभायमान हैं । तथा जो श्रीवासुपूज्य हैं । सत्यवचनरूपी लक्ष्मी से सुशोभित होने को श्री कहते हैं । वा मुखको कहते हैं । लिखा भी है 'वंदने वदने वादे वेदनायां च वः स्त्रियाम्' अर्थात् व का अर्थ वंदना, मुह, वाद और वेदना है । जिनके व अर्थात् मुख श्री अर्थात् सत्य वचनरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हों ऐसे सत्य भाषण करनेवाले सत्पुरुषोंको श्रीव कहते हैं । आ शब्दका अर्थ समंतात् वा चारो ओर से होता है । जो सत्य भाषण करनेवाले सत्पुरुषोंके द्वारा चारो ओरसे पूर्णांग वा सब तरहसे—अच्छी तरह पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं । भगवान् शंभवनाथ स्वामी गणधरादि सत्यभाषण करनेवाले सत्पुरुषोंके द्वारा पूज्य हैं । इसलिये वे श्रीवासुपूज्य कहे जाते हैं । तथा जो भगवान् वृषभजिनपति हैं । दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंसे प्रगट होनेवाले धर्मको वृष कहते हैं । उस धर्मसे जो शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं । तथा जिनपति जिनेन्द्रदेव को कहते हैं । जो जिनेन्द्रदेव सोलह भावनाओंसे उत्पन्न हुए धर्मसे सुशोभित हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं । भगवान् शंभवनाथ भी सोलह भावनाओंका चिंतवन कर तीर्थंकर हुए थे इसलिये वे वृषभजिनपति कहलाते हैं । फिर जो भगवान् श्रीद्रु-

मांक हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं, द्रु अशोक वृक्षको कहते हैं या शोभाको कहते हैं और अंक समीपको कहते हैं। जिनके समीपमें अनेक प्रकारकी शोभासे सुशोभित अशोक वृक्षकी शोभा विद्यमान हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके समीप भी अशोक वृक्ष शोभायमान था क्योंकि आठ प्रातिहार्योंमें अशोक वृक्ष भी एक है इसलिये वे श्रीद्रुमांक कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अथधर्म हैं। निश्चय नय और व्यवहार नय दोनों नयोंसे विरोध रखनेवाले मिथ्या धर्मको थधर्म कहते हैं। जिनके ऐसा मिथ्या धर्म न हो उनको अथधर्म कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके कहे हुए बचनोंमें भी पूर्वापर कोई विरोध नहीं है, न निश्चय व्यवहारसे कोई विरोध है इसलिये वे भगवान् अथधर्म कहे जाते हैं। अथवा थ शब्दका अर्थ थोडा वा अपूर्ण है। लिखा भी है–थं स्तोकार्थे नपुंसकम्। अर्थात् थ शब्द नपुंसक लिंग है और उसका अर्थ थोडा है। जिनका कहा हुआ धर्म थोडा वा अपूर्ण न हो उनको अथधर्म कहते हैं। भगवान् शंभवनाथका कहा हुआ धर्म भी अपूर्ण नहीं है किन्तु पूर्ण है। मोक्षका साक्षात् कारण है इसलिये वे अथधर्म कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। पुष्पदन्त दिग्गजको कहते हैं। अमरकोषमें लिखा है "ऐरावतः पुंडरीको वामनः कुमुदोंजनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः"। अर्थात् ऐरावत पुंडरीक वामन कुमुद अंजन पुष्पदन्त सार्वभौम सुप्रतीक ये आठ दिग्गज कहलाते हैं। नेमिनिर्वाण काव्यमें भी लिखा है। "करायतिन्यक्कृतपुष्पदन्तः।" अर्थात् जो अपनी लंबी भुजाओंसे पुष्पदन्त दिग्गजकी सूंडको भी मात करते हैं। दिग्गज दिशाओंमें रहनेवाले महागजराज कहलाते हैं। जो मोक्षके अनन्त सुखरूपी महावनमें पुष्पदन्त अथवा दिग्गजके समान क्रीडा करनेवाले हों उनको पुष्पदन्त कहते हैं। भगवान् शंभवनाथ भी मोक्षमें प्राप्त होनेवाले अनंत सुखरूपी महागहन वनमें दिग्गजोंके समान ही स्वतंत्र रीतिसे क्रीडा कररहे हैं इसलिये वे पुष्पदंत कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। मति-

ज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन चारों ज्ञानोंको धारण करनेवाले ऋषियोंको मुनि कहते हैं। गणधर देवोंको जिन कहते हैं। जिनके गणधरदेव चारों ज्ञानको धारण करनेवाले अनेक मुनियोंसे सुव्रत अर्थात् घिरे हों—सुशोभित हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके समवसरणमें भी चारुषेण आदि एक सौ पांच गणधर मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इन चारों ज्ञानोंको धारण करनेवाले अनेक मुनियों के साथ सुशोभित थे इसलिये वे भगवान् मुनिसुव्रतजिन कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। जिसका अंत न हो उसको अनन्त कहते हैं। जिनकी वाणी अनंत हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। भगवान् शंभवनाथकी वाणी भी अनंत है—पारावार रहित है अथवा अनंत धर्मोंको कहने वाली है इसलिये वे भगवान् अनंतवाक् कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। श्री शोभाको कहते हैं। और सुपार्श्व समीपको कहते हैं। मानस्तंभ, प्रतोली, निधि, मार्ग, सरोवर, वापी, क्रीडावन आदि समवसरणकी शोभा जिनके समीप वा चारों ओर हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके समवसरणमें भी यह सब शोभा थी और वह शोभा उनके चारों ओर थी इसलिये वे श्रीसुपार्श्व कहलाते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। सब जीवों को शांति दें—सब जीवोंका उपकार करें उनको शांति कहते हैं। भगवान् शंभवनाथने भी अनेक जीवोंके जन्ममरणरूप महा दुःख दूर कर उनको सदाके लिये शांति प्रदान की है—उन्हें मोक्ष प्राप्त कराकर सदाके लिये शांति दी है इसलिये वे शांति कहे जाते हैं। यही बात स्वामी समन्तभद्राचार्यने अपने बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें लिखी है "त्वं शंभवः संभवतर्षरोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके। आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशान्त्यै"—अर्थात्—हे नाथ! जिस प्रकार एक वैद्य इस संसारमें ज्वर आदि रोगोंको शांत कर जीवों का कल्याण करता है उसी प्रकार हे शंभव! आप भी संभव अर्थात् संसार के मनोरथ वा तृष्णारूपी रोगोंसे अत्यंत दुःखी होने वाले—जलनेवाले लोगोंके

लिये आकस्मिक वैद्य हैं; उनके समस्त रोगों को-संसारके समस्त दुःखों को दूर कर सदा के लिये शांति स्थापन कर देते हैं—उन्हें मोक्ष प्राप्त करा देते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभोरोविमलविभु हैं। पद्म कमलको कहते हैं, प्रभाका अर्थ समान है और उर हृदयको कहते हैं। इन्द्रादिक पुण्यपुरुष पुण्य कर्म के उदयसे होते हैं इसलिये वे विमल कहलाते हैं। तथा विभु स्वामीको कहते ही हैं। जिनके हृदय कमलके समान निर्मल वा दयालु हों ऐसे इन्द्रादिक महापुरुषों को पद्मप्रभोरोविमल कहते हैं। उनके स्वामीको पद्मप्रभोरोविमलविभु कहते हैं। भगवान् शंभवनाथ कमलके समान निर्मल हृदयको धारण करनेवाले इन्द्रादिक महापुण्यवान पुरुषों के स्वामी हैं इसलिये वे पद्मप्रभोरोविमलविभु कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अवर्द्धमान हैं। अवका अर्थ चारों ओर है, ऋद्धका अर्थ परिपूर्ण है और मान केवलज्ञानको कहते हैं। जिनका ज्ञान सब ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला पूर्ण केवल ज्ञान हो उनको अवर्धमान कहते हैं। भगवान् शंभवनाथका ज्ञान भी ऐसा ही है इसलिये वे अवर्द्धमान कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अप्यजांक हैं। पि शब्दका अर्थ भय है। लिखा भी है "पिः पुंसि पीडितारावे सागरे सोदरे दरे"। पि शब्द पुल्लिंग है और उसका अर्थ दुःखभरे शब्द, समुद्र, भाई और भय है। जिनके इस लोक परलोक आदि सात प्रकार का भय न हो उनको अपि और अज मुनिको कहते हैं। तथा अंक समीप को कहते हैं। सात प्रकारके भयसे रहित मुनियोंको अप्यज कहते हैं। जिनके समीप ऐसे मुनि हों उनको अप्यजांक कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके समवसरणमें भी सातों प्रकारके भयोंसे रहित अनेक मुनिराज थे इसलिये उन भगवानको अप्यजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मल् कर्मोंको कहते हैं और लि नाश को कहते हैं। लिखा भी है 'लिः पुंसि लावः' अर्थात् लि शब्दका अर्थ नाश है। जिनसे अथवा जिनके द्वारा कर्मोंका नाश हो उनको मल्लि कहते हैं। भगवान् शंभवनाथने भी कर्मोंका नाश किया है इसलिये वे मल्लि

हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। न मनुष्यको कहते हैं। लिखा भी है 'नो नरे च सनाथेपि' अर्थात् न शब्दका अर्थ मनुष्य और नाथ है। इ कामको कहते हैं और हिंसा करने या नाश करनेको मि कहते हैं। जो मनुष्योंके काम क्रोध आदिको नष्ट करदे उनको नेमि कहते हैं। भगवान् शंभवनाथने भी धर्मोपदेश देकर अनेक भव्य जीवोंके काम क्रोध लोभ मान माया आदि दोष दूर कर दिये हैं इसलिये वे नेमि कहलाते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। न नास्तिकत्व अथवा मिथ्यात्वको कहते हैं। कहीं कहींपर नामके पहले अक्षरसे भी उसका पूरा नाम ग्रहण करलेते हैं। इसी न्यायसे यहां न शब्दसे नास्तिकपना लिया गया है। और मि निवारण करनेको कहते हैं। जिनसे नास्तिकत्व अथवा मिथ्यात्वका निवारण हो उनको नमि कहते हैं। भगवान् शंभवनाथने भी अनेक भव्य जीवोंका मिथ्यात्व दूर किया है—अनेक भव्य जीवोंका मिथ्यात्व छुडाकर उन्हें मोक्षमार्गमें लगाया है इसलिए वे नमि हैं। स्वामी समंतभद्राचार्यने बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें लिखा भी है "बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः। स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकांतदृष्टेस्त्वमतोसि शास्ता। अर्थात् हे नाथ! बंध, मोक्ष, मिथ्यात्व अविरत आदि बंधके कारण और संवर निर्जरा गुप्ति समिति आदि मोक्षके कारण, कर्मोंसे बंधा हुआ संसारी जीव, कर्मोंसे मुक्त हुआ जीव तथा मोक्षका फल इन पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप आपके ही मत में बन सकता है। क्योंकि आप स्याद्वादी हैं—अनेक धर्मोंका निरूपण करनेवाले हैं। जो सर्वथा एकांतका निरूपण करते हैं उनके मतमें बंध मोक्ष आदि कुछ नहीं बन सकता। इसलिये हे स्वामिन यथार्थ हितोपदेशी आप ही हो सकते हैं। आपके सिवाय अन्य कोई भी एकांतवादी हितोपदेशी नहीं हो सकता। और भी लिखा है "स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्" अर्थात्— हे नाथ! अनेक धर्मोंको कहनेवाला स्यात् शब्द आपके ही मतमें लग सकता है। आत्माके स्वरूपको न जाननेवाले अन्य एकांत वादियोंके मत

में कभी नहीं लग सकता। इसलिये भगवान् शंभवनाथ अपने स्याद्वाद वा अनेकांतरूप सिद्धांतसे अनेक भव्य जीवोंका मिथ्यात्व दूर करनेवाले नमि हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। सु का अर्थ उत्तम है और मतिका अर्थ बुद्धि है। जिनके संबंधसे जीवोंकी बुद्धि उत्तम होजाय उनको सुमति कहते हैं। भगवान् शंभवनाथके सम्बन्धसे उनके गुणोंका स्मरण करनेसे, उनके दर्शन करनेसे और उनकी स्तुति करनेसे भव्य जीवोंकी बुद्धि मिथ्यात्वसे छूटकर सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होजाती है–मोक्षमार्गमें लग जाती है इसलिये वे भगवान सुमति कहे जाते हैं। तथा जो भगवान् सत् अर्थात् अविनश्वर हैं। सदा एकसे रहनेवाले जन्ममरणसे रहित हैं। ऐसे वे हर्य्यंक–हरि अर्थात् घोडा और अंक अर्थात् चिन्ह। जिनके चरणकमलोंमें घोडेका चिन्ह है ऐसे श्री शंभवनाथ स्वामी तृतीय तीर्थंकर मुझ जगन्नाथ नामके धीर अर्थात् पंडितको–ग्रंथके बनानेवाले विद्वद्वर श्रीजगन्नाथ पंडितको इस संसारके भयसे रक्षा करो। अथवा मुझको और पंडितप्रवर श्रीजगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करो।

काव्यका तीसरा अर्थ समाप्त हुआ।

श्री अभिनंदनस्तुतिः

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

टीका–असौ हर्य्यंकः। हरिशब्दार्था उक्ताः। हरिः कपिरंके यस्य स हर्यंकः अभिनंदनभट्टारकः चतुर्थजिनेशिता। मां श्रीजगन्नाथधीरमवतु इति संबंधः। किंलक्षणः? श्रेयान्। श्रेयं महाव्रतादिकमनिति पालयति श्रेयान्। पुनः श्रीवासुपूज्यः। उशब्दो हरार्थं वक्ति। तदुक्तं "उशब्दः शंकरे तोये"। आः सूर्यादयः ' अः शिवे केशवे वायौ ब्रह्मचंद्राग्निभानुषु। आ स्वयंभूस्तथोक्त

स्यात् " इति । उश्च आश्च वाः । श्रिया युता वाः श्रीवाः । श्रीः वाभिः सुपूज्यः श्रीवासुपूज्यः । वचनं हि " निर्ग्रंथकल्पवनिता व्रतिका भभौमनागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः । कोष्ठस्थिता नृपशवोपि नमन्ति यस्य " इति । स तु निखिलैरर्च्यः । तथाप्यत्र वाभ्यां ताभ्यामपि पूज्यः । मुहुः वृषभजिनपतिः । दीक्षाभारवहनत्वाद् वृषभा इव वृषभास्ते च ते जिना वज्रनाभिपुरस्सराश्च्यधिकशतगणरास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । मुहुः श्रीद्रुमांकः । श्रीश्च द्रुमश्च श्रीद्रुमाः चार्थद्वंद्वः । शोभामहानंदाशोकतरुः । स अंके समवसृतौ यस्य स श्रीद्रुमांकः । भूयः अथधर्मः । " थं स्तोकार्थे नपुंसकं । " अथेषु पूर्णेषु स्याद्वादादिषु धर्मा यस्य सोयमथधर्मः । मुहुः पुष्पदंतः पुष्पन् विकसन् लोकातिगः अंतः सत्त्वं यस्य स पुष्पदंतः । पुनः मुनिसुव्रतजिनः मुनीन् जिनर्षीन् सुव्रारयंति जिनमतद्वेषादाच्छादयंति मुनिसुव्रताः ।

वृञ् आवरणे क्वप्रत्ययः । मुनिसुव्रता मिथ्यामतालीढचेतस्का एकान्तरतास्तान् जयति मुनिसुव्रतजिनः । मुहुः अनंतवाक् । नास्त्यंतोवसानं यस्याः सानंता । अनंता वाग् यस्य सोनंतवाक् । भूयः श्रीसुपार्श्वः । श्रयति विहायात्मपदमिति श्रीः स्थिरस्वभावा सा चासौ ईः श्रीः इति श्रीः । श्रीः सुपार्श्वे समर्यादे (समीपे) यस्य स श्रीसुपार्श्वः । " ई रमामदिरामोहे " । पुनः शांतिः शं धनं अंतौ अंतिके जनानां यस्मादिति शांतिः । " श्रियां शं वनं धनमिति " । मुहुः पद्मप्रभः पद्यते महालक्ष्मीर्यस्मिन् परिभुते तत्पद्म कनकं । पद्मस्य प्रभा इव प्रभा शरीरकांतिर्यस्य स पद्मप्रभः । पीतवर्णत्वात् । भूयः अरः अं ब्रह्म रौति वदति अरः । पुनः विमलविभुः विमलानां सम्यग्दृष्टीनां विभुर्विमलविभुः पुनः वर्द्धमानः कर्माणि वर्द्धते छेदयति वर्द्ध (वर्द्ध छेदनपूरणयोः) मानं ज्ञानं यस्य स वर्द्धमानः । मुहुः अजांकः । अजः नाशरहितोऽकोऽनंतचतुष्टयं यस्य सोऽजांकः । कथं अपि निश्चयेन । पुनः

मल्लिः मल्लते बिभर्ति अनंतसुखे जनान् इति मल्लिः । भूयः नेमिः । भव्यान् दीक्षां नयति नेमिः । पुनः नमिः । अनुपमत्वात् । पुनः सत् शास्वतः । पुनः सुमतिः सुज्ञः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंन्द्रकीर्तिमुख्यशिष्यपंडितजगन्नाथकृतायां श्रीचतुर्थतीर्थंकरस्याभिनंदनस्य स्तुतिः समाप्ता ॥४॥

आगे श्री अभिनंदननाथ चौथे तीर्थंकरकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः पुष्पदंतः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शांतिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः वर्द्धमानः अपि अजांकः मल्लिः नेमिः सुमतिः सत् असौ हर्यंकः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु ।

अर्थ—जो श्री अभिनन्दननाथ स्वामी श्रेयान् हैं । महाव्रतादिक महातपश्चरणको श्रेय कहते हैं और वन् पालन करनेको कहते हैं । भगवान् अभिनन्दननाथने भी महाव्रतादिक तपश्चरण धारण किया है इसलिये वे श्रेयान् कहे जाते हैं । फिर जो भगवान् वासुपूज्य हैं । उ शब्दका अर्थ महादेव है । तथा आ शब्दका अर्थ सुर्य वा चंद्रमा विष्णु आदि है । अ का अर्थ महादेव, नारायण, वायु, ब्रह्म, चन्द्र, अग्नि, सुर्य बताया है, और आ शब्दका अर्थ—ऊपर लिखे हुए सब अर्थ है तथा स्वयंभू भी है । व्याकरणके अनुसार उ और आ मिलानेसे वा बनजाता है । जो विभूतिको धारण करते हैं उन्हें श्री कहते हैं । जो विभूतिको धारण करने वाले महादेव सुर्य चन्द्रमा आदिके द्वारा अच्छी तरह पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं । भगवान् अभिनंदननाथ भी इन सबके द्वारा पूज्य थे इसलिए वे श्रीवासुपूज्य कहलाते हैं । लिखा भी है "निर्ग्रंथकल्पवनिता व्रतिका भभौमनागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः । कोष्ठस्थिता नृपशवोपि नमन्ति यस्य" अर्थात् भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासीदेव, इनकी देवांगनाएं, मुनि, अर्जिकाएं, श्रावक और पशु ये बारह कोठोंमें बैठे हुए सब प्रकार के जीव जिन्हें नमस्कार करते हैं । इस प्रकार वे अभिनंदन स्वामी सब

के द्वारा पूज्य हैं। फिर सुर्यादिकके द्वारा तो पूज्य हैं ही। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। जो वृषभ या बैलके समान दीक्षाके भारको धारण करें उनको वृषभ कहते हैं। तथा गणधरदेवोंको जिन कहते हैं। गणधरदेव भी दीक्षाके भारको धारण करते हैं इसलिये वे वृषभजिन कहलाते हैं। उनके स्वामीको वृषभजिनपति कहते हैं। भगवान् अभिनंदन स्वामी भी दीक्षा के भारको धारण करनेवाले श्री वज्रनाभि आदि एकसौ तीन गणधरों के स्वामी हैं इसलिये वे वृषभजिनपति कहे जाते हैं। फिर जो भगवान श्रीद्रुमांक हैं। जिनके समवसरणमें श्री अर्थात् शोभा और द्रु अर्थात् अशोक वृक्ष दोनों हों उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् अभिनंदन के अंक अर्थात् समवसरणमें भी शोभा और अशोक वृक्ष थे इसलिये वे श्रीद्रुमांक कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अथधर्म हैं। थ थोडे को कहते हैं। जिनके मतमें थोडे धर्म न हों उनको अथधर्म कहते हैं। भगवान् अभिनदन स्वामीके मतमें स्याद्वाद के द्वारा कहे जाने वाले पूर्ण धर्म थे इसलिये वे अथधर्म हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। पुष्पद् शब्दका अर्थ विकसित होनेवाला है। अंत शब्दका अर्थ बल है। जिनका बल विकसित हो प्रसिद्ध हो उनको पुष्पदंत कहते हैं। अभिनन्दन स्वामीका बल भी जगतप्रसिद्ध लोकोत्तर था इसलिये वे पुष्पदंत कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। मुनिका अर्थ महाव्रती है, सुव्रत शब्दका अर्थ जिनमतसे द्वेष कर आच्छादन करना है। जो जिन मतसे द्वेषकर मुनियोंका आच्छादन करें ऐसे घोर मिथ्यादृष्टी लोगोंको मुनिसुव्रत कहते हैं। जिनका अर्थ जीतनेवाले हैं। भगवान् अभिनंदन स्वामी ऐसे एकांतमें लीन होनेवाले महा मिथ्यादृष्टी लोगोंको जीतनेवाले हैं इसलिये वे मुनिसुव्रतजिन कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं सदा रहनेवाली अनंत वाणीका निरूपण करनेवाले हैं। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। अपने स्वरूपको छोडकर जो रहे उसको श्री कहते हैं। ई लक्ष्मीको कहते हैं। ई का अर्थ लक्ष्मी और मदसे उत्पन्न हुई बेहोशी है। लक्ष्मीका स्वभाव

अस्थिर है—चंचल है परन्तु जो लक्ष्मी अपने स्वरूपको छोडकर रहे, चंचल न रहे, स्थिर रूपसे रहे उसको श्री ई कहते हैं। दोनोंको मिलानेसे श्री शब्द बन जाता है। जिनके सुपार्श्व अर्थात् समीपमें स्थिर स्वभाववाली लक्ष्मी हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् अभिनन्दनके समीप भी स्थिर स्वभाववाली अनन्त चतुष्टय स्वरूप लक्ष्मी है इसलिये वे श्री सुपार्श्व कहलाते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। शं धनको कहते हैं। शाका अर्थ लक्ष्मी है और शंका अर्थ बन और धन है। जिनके प्रभावसे लोगोंके समीप सम्यग्दर्शनरूप धन प्राप्त हो वे शांति कहाते हैं। भगवान् अभिनन्दनके उपदेशसे भी अनेक भव्यजीवोंको सम्यग्दर्शनरूप धन प्राप्त हुआ था इसलिये वे शान्ति हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। पद् प्राप्त होनेको कहते हैं और मा लक्ष्मीको कहते हैं। जिसके पहननेसे धारण करनेसे महालक्ष्मी प्राप्त हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिसकी प्रभा अथवा शरीरकी कांति सुवर्णके समान हो उसको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् अभिनन्दन स्वामीके शरीरकी कांति भी सुवर्णके समान थी इसलिए वे पद्मप्रभ कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। अ ब्रह्मको कहते हैं तथा र कहने वा वर्णन करनेको कहते हैं। जो परब्रह्मका वर्णन करें उन्हें अर कहते हैं। भगवान् अभिनन्दन स्वामीने भी अपने धर्मोपदेशसे परब्रह्म सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप बतलाया था और अनेक जीवोंको प्राप्त कराया था इसलिए वे अर हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। जिनकी आत्मा निर्मल हो ऐसे सम्यग्दृष्टियोंको विमल कहते हैं। जो उनके स्वामी हों उनको विमलविभु कहते हैं। भगवान् अभिनन्दन भी समस्त भव्य जीवोंके स्वामी हैं इसलिए वे विमलविभु कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। वर्द्ध का अर्थ छेदन और मान का अर्थ ज्ञान है। जिनका ज्ञान कर्मोंको छेदन करनेवाला हो उनको वर्द्धमान कहते हैं भगवान् का ज्ञान भी समस्त कर्मोंको नाश करनेवाला है इसलिए वे वर्द्धमान हैं। फिर जो भगवान् अपि अर्थात किसी नयसे अजांक हैं। जिसका कभी

नाश न हो उसको अज्र कहते हैं । जिनका अंक अर्थात् अनंत चतुष्टय रूप चिन्ह कभी नाश न हो उनको अजांक कहते हैं। भगवान्का अनंतचतुष्टयरूप चिन्ह भी ऐसा है इसलिये वे निश्चयनयसे अजांक हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मल धातुका अर्थ धारण करना है । जो जीवोंको अनंत सुखमें धारण करदें उनको मल्लि कहते हैं। भगवान् अभिनंदन स्वामीके धर्मोपदेशसे भी अनेक भव्य जीवोंने अनन्त सुख प्राप्त किया है इसलिये वे मल्लि हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जो भव्य जीवोंको दीक्षा धारण करावें उनको नेमि कहते हैं। भगवान्के उपदेशसे भी अनेक भव्य जीवोंने दीक्षा धारण की है इसलिये वे नेमि हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं । मि प्रमाण करनेको कहते हैं । जो संसारी जीवोंके प्रमाणमें न आवें उनको नमि कहते हैं । भगवान् अभिनन्दन स्वामी संसारी जीवों के ज्ञानगोचर नहीं होते। संसारी जीव उनके अमूर्त स्वरूपको प्रत्यक्ष नहीं जान सकते इसलिये वे नमि कहलाते हैं। अथवा वे अनुपम हैं। संसारमें उनकी अन्य कोई उपमा नहीं है। संसारी जीव किसी की उपमा देकर उनका स्वरूप नहीं कह सकते इसलिये भी वे नमि हैं। फिर जो भगवान् सुमति अर्थात् सर्वोत्तम ज्ञानको धारण करने वाले हैं इसलिये सुमति कहाते हैं। तथा जो भगवान् सत् अर्थात् नाश रहित वा अविनश्वर हैं। ऐसे जो हर्यंक=हरि अर्थात् बंदर और अंक अर्थात् चिन्ह। जिनके चरणकमलोंमें बंदर का चिन्ह है ऐसे श्री अभिनन्दननाथ भट्टारक चतुर्थ तीर्थंकर मुझ जगन्नाथ पंडितको इस संसारके भयसे रक्षा करो।

इति अभिनंदनजिनस्तुतिः।

श्री सुमतिनाथस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरेविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका–सुमतिः सुमतिनाथनामा पंचमजिनदेवः अपि निश्चयेन मां श्री जगन्नाथधीरमवतिवति संबंधः । किंविशेषणगोचरः ? श्रेयान् श्रीयत इति श्रेयः 'अचो यदिति' यत्प्रत्ययः । अन प्राणने । अनिति संसारभयादिति अन् दशविधो धर्मः । श्रेयः आश्रयणीय अन् यस्य स श्रेयान् । पुनः किंलक्षणः । श्रीवासुपूज्यः । श्रीवैः शोभनवंदनान्वितैः आसुपूज्यः श्रीवासुपूज्यः । " वंदने वदने वादे वेदनायां च वः स्त्रियामिति " । भूयः वृषभजिनपतिः । व्रियत इति वृः ग्राह्यः । वृश्चासौ पः मोक्षः इति वृषः । उपादेयमोक्षः । " षोतिरोषेपवर्गे पः " । वृषेण ग्राह्यमोक्षेण भान्तीति वृषभाः । वृषभाश्च ते जिनाश्च वृषभजिनास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमांकः श्रीः लक्ष्मीः । द्रवः अशोकादयोऽष्टप्रातिहार्याणि । मश्चंद्रः । " मः शिवे च विधौ चंद्रे " । श्रीश्च द्रवश्च मश्च श्रीद्रुमाः ते अंके यस्य स श्रीद्रुमांकः । मुहुः अथधर्म्मः । एन ब्रह्मणा थधर्मः अतिगंभीरस्वभावो यस्य सोथधर्मः । " धर्माः पुण्ययमन्यायस्वभावाचारसोमपाः " इत्यमरः । पुनः हर्यंकः । हर्य क्लांतौ सूर्यास्तमने हर्यति ग्लानिं करोति हर्यः चक्रवाक् । सोऽके यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदंतः । पुष्पन् अंतो धर्मो यस्य स पुष्पदंतः । मुहुः मुनिसुव्रतजिनः । मुनिसुव्रता जिनाश्चामराद्याः षोडशाधिकशतगणधरा यस्य स मुनिसुव्रतजिनः । मुहुः अनंतवाक् । अनंतेषु भव्यजीवेषु वाग् यस्य सोनंतवाक् । भूयः श्रीसु-

पार्श्वः श्रिया युतं पार्श्वं यस्य स श्रीसुपार्श्वः। पुनः शांतिः अन्यवा-
दिनां मतानि शांतयति उपशमयति विनाशयति यः स शांतिः।
मुहुः पद्मप्रभः हेमकांतिः। भूयः अरः। नास्ति रः कामो यस्य सोरः
मदनमदबिदारी। भूयः विमलविभुः। भूयः असौवर्द्धमानः। अः ज्ञानं
तस्य सः सदानंदः इति असः अनंतज्ञानसुखं द्वृष्टे च स सदानंद
इत्यभिधानम्। अस एव उः समुद्रः असौ अनंतज्ञानसदानंदसमुद्रः।
"उः समुद्रे जलेनंते पीडने पुंसि भाषणे"। असौ एव वर्द्धमानः
असौवर्धमानः। पुनः अजांकः। न विद्यन्ते कर्मादयो ज्ञा जेतारो येषां ते
अज्ञाः महामुनयः। "जो जेता जं च जीवेपि"। तेऽके निकटे
यस्य सोजांकः। पुनः मल्लिः मल्लते चित्तमात्मनि मल्लिः। मल्ल
धारणे। भूयः नमिः ना नराः। ईः मोहः "ई रमा मदिरामोहे
महानन्देशिरोभ्रमे स्त्रीलिंगोयमुणाद्यन्तो नातोस्माल्लोपनं सुपः"
नानां ईर्मोहस्तं मिनाति नेमिः। भूयः नमिः दीक्षोपादानावसरे
सिद्धं नमति नमिः। नमः सिद्धेभ्यः इत्युच्चारणत्वात्। पुनः
सुमतिः शोभना मा मंत्रा आह्वनाद्यो यस्यां सा सुमा
"मो मंत्रे मन्दिरे माने"। सुमा तिः पूजा यस्य स सुमतिः
"पूजायां तिः स्त्रियां" पुनः सत् शास्वतः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्य-
शिष्य-पण्डितजगन्नाथकृतायां श्रीपञ्चमतीर्थंकरस्य सुमतिजिनस्य स्तुतिः समाप्ता।

अब पांचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः
अथधर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः
शान्तिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः असौवर्द्धमानः अजांकः मल्लिः
नेमिः नमिः सुमतिः सत् एवंभूतः सुमतिः अपि मां श्रीजगन्नाथ-
धीरं अवतु।

अर्थ—जो श्रीसुमतिनाथ भगवान् श्रेयान् हैं। आश्रय अर्थको
कहनेवाले श्री धातुसे यत् प्रत्यय करके श्रेय बनता है। तथा जो सं-

सारके भयसे रक्षा करे ऐसे दश प्रकारके धर्मको अन् कहते हैं। जिनका कहा हुआ धर्म आश्रय करने योग्य हो उनको श्रेयान् कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथका कहा हुआ दशप्रकारका उत्तम क्षमा मार्दव आदि धर्म भी आश्रय करने योग्य वा पालन करने योग्य है इसलिये वे भगवान् श्रेयान् हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्री शोभाको कहते हैं व वंदना करनेको—नमस्कार करनेको कहते हैं। आ चारों ओरका नाम है। और अच्छी तरह पूजा करने योग्य को सुपूज्य कहते हैं। जो शोभायमान नमस्कार करनेवालोंके द्वारा चारों ओरसे अच्छी तरह पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथ स्वामी भी नमस्कार करते हुए इन्द्रादिकके द्वारा अच्छीतरह पूज्य हैं इसलिये श्रीवासुपूज्य हैं। फिर जो वृषभजिनपति हैं। वृ धातुका अर्थ ग्रहण करना है। जो ग्रहण करने योग्य हो उसको वृ कहते हैं। ष का अर्थ मोक्ष है। जो ग्रहण करने योग्य मोक्ष है उसको वृष कहते हैं। उस ग्रहण करने योग्य मोक्षसे जो शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं। कर्मोंके जीतनेवाले मुनिराजोंको वा गणधरोंको जिन कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथ स्वामी ग्रहण करने योग्य मोक्षसे सुशोभित होनेवाले गणधरादि जिनोंके पति वा स्वामी हैं इसलिए वे वृषभजिनपति कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं। द्रु अशोकवृक्ष आदि आठों प्रातिहार्योंको कहते हैं। म चंद्रमाको कहते हैं और अंक समीपको कहते हैं। जिनके समीपमें लक्ष्मी वा शोभा हो, आठों प्रातिहार्य हों और चंद्रादिक देव हों उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथके समीप भी समवसरणकी शोभा थी, आठो प्रातिहार्य थे और चंद्रादिक सब देव थे इसलिए वे श्रीद्रुमांक कहलाते हैं। फिर जो भगवान् अधर्म हैं। अ परब्रह्मको कहते हैं। परब्रह्म पद अरहंत अवस्थामें प्राप्त होता है। धर्मका अर्थ स्वभाव है। अरहंत अवस्थामें प्राप्त होनेके कारण जिनके धर्म वा भाव ध अर्थात अत्यंत गंभीर होगये हों

उनको अथवर्म कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथका स्वभाव भी निश्चल है इसलिए वे भगवान् अथवर्म हैं। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। हर्य धातुका अर्थ ग्लानि करना है। सूर्यके अस्त होते समय चकवा नामका पक्षी ग्लानि करता है--दुःखी होता है। क्योंकि रात्रिमें चकवा चकवीका वियोग हो जाता है। इस प्रकार हर्य चकवाको कहते हैं। अंक चिन्हको कहते हैं। जिनका चिन्ह चकवा हो उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथके चरणकमलोंका चिन्ह चकवा है इसलिये वे हर्यंक हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जिनका अंत अर्थात धर्म सदा पुष्पवत् अर्थात् विकसित होता रहे उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। जो मुनियोंसे घिरे रहें उनको मुनिसुव्रत कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथके समवसरणमें चामर आदि एकसौ सोलह गणधर सदा मुनियोंके साथ विराजमान रहते थे इसलिये वे मुनिसुव्रत जिन हैं। फिर जो भगवान अनंतवाक् हैं। भव्य जीवोंकी संख्या अनन्त है इसलिये अनन्त का अर्थ भव्य है। भगवान् सुमतिनाथकी वाणी भव्य जीवोंका उपकार करनेवाली है इसलिये वे भगवान् अनन्तवाक् हैं। तथा जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनका पार्श्वभाग बहुतही शोभायमान हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। जो अन्य वादियोंके मतको शांत करें--नाश करें उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। मा लक्ष्मीको कहते हैं और पद् प्राप्तिको कहते हैं। जिससे मा अर्थात् लक्ष्मी वा शोभा प्राप्त हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं। भगवान् सुमतिनाथ की प्रभा सुवर्ण के समान है इसलिये वे पद्मप्रभ हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। र कामदेव को कहते हैं जिनके कामका अभाव हो उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं अत्यंत शुद्ध अवस्थाको विमल कहते हैं और सबके स्वामीको विभु कहते हैं। फिर जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं। अका अर्थ ज्ञान और सका अर्थ सदा रहनेवाला अनन्त सुख है। तथा उ समुद्रको कहते हैं अर्थात् ज्ञानके स अर्थात् अनंत सुखको अस

कहते हैं । वह अस अर्थात् ज्ञानका अनंत सुख उ अर्थात् एक महासागर है। इसप्रकार असौका अर्थ ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला अनन्तसुखरूप महासागर हुआ। जो ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले अनंत सुखरूप महासागर होकर सदा वृद्धिको प्राप्त होते रहें उनको असौवर्द्धमान कहते हैं। जिनको कर्म आदि शत्रु अथवा क्रोधादिक शत्रु कभी नहीं जीत सकते ऐसे मुनियोंको अज कहते हैं। ऐसे मुनि जिनके अंकमें हों उनको अजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मल्ल धातुका अर्थ धारण करना है। जो अपने मनको अपने आत्मामें धारण करलें उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। न का अर्थ मनुष्य है और ई शब्दका अर्थ मोह है। मि शब्दका अर्थ दूर करना वा नाश करना है। जो मनुष्योंके मोहको दूर करें उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। जो सिद्धों को नमस्कार करें उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। सुका अर्थ उत्तम है, म का अर्थ मंत्र है और ति का अर्थ पूजा है। जिनकी पूजा करते समय आह्वानन आदि के मंत्र बहुत ही उत्तम उच्चारण किये जाते हैं उनको सुमति कहते हैं। फिर जो भगवान् सत् अर्थात् अविनश्वर हैं। ऐसे श्री सुमतिनाथ पंचम तीर्थंकर दृढता पूर्वक मुझ जगन्नाथ पंडितको इस संसारके भयसे रक्षा करो। इति सुमतिनाथस्तुतिः।

अथ पद्मप्रभस्तुतिः।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्योवृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

टीका—अथ पंचमस्तुत्यनंतरं, मंगलार्थो वा। पद्मप्रभः पद्मप्रभ नामा षष्ठजिनेंद्र मां श्रीजगन्नाथधीरमवतादिति संबंधः। किंविशिष्टः

श्रेयान् श्रेष्ठः। पुनः श्रीवासुपूज्यः। श्रीवाः सत्यवादा येषां ते श्रीवाः जैनतत्त्ववादिनस्तैरासुपूज्यः श्रीवासुपूज्यः। भूयः अवृषभजिनपतिः न सन्ति वृषाणि श्रेष्ठानि भानि भोगा येषां ते अवृषभाः। "भं नक्षत्रे भगे भोगे"। अवृषभाश्च ते जिना वज्रचामराद्य एकादशोत्तरशतगणधरास्तेषां पतिः अवृषभजिनपतिः। भूयः श्रीद्रुमांकः। श्रीद्रुमाः कल्पवृक्षाः अंके समवसरणे यस्य स श्रीद्रुमांकः। पुनः धर्मः। धर्ममूर्तित्वात्। पुनः हर्यंकः। हरति चित्तं रागिणामिति हरिः कमलं। हरिः अंके यस्य स हर्यंकः। पुनः पुष्पदंतः। पुष्प विकसने। पुष्पति विकसति विषयत्वाश्रितं-बिनीषु इति पुष्पन् मदनः। पुष्पतः अंतो विनाशो यस्मादिति पुष्पदंतः। पुनः मुनिसुव्रतजिनः। मुनिसुव्रषु मुनिग्राह्यतपःसु ताः तस्कराः क्रोधादयस्तान् जयति स मुनिसुव्रतजिनः। पुनः अनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः। अनंता अनवधयो वाचो यस्माज्जनानामिति अनंतवाक्। इत्थं नुतं श्रीसुपार्श्वं सत् समीपं यस्य सोऽनंतवाक्-श्रीसुपार्श्वः। मुहुः शांतिः। शा श्रीः अंतावंतिके यस्य स शांतिः। "शा श्रियाम्"। पुनः अरः। एन केवलज्ञानेन मिथ्यांधकार-विनाशने रः सूर्य इव इति अरः। पुनः विमलविभुः। विगतानि मलानि अष्टकर्माणि यस्मिन् स विमलो मोक्षः। तस्य विभुः विमलविभुः। भूयः असौवर्द्धमानः। न सं सुखं असं दुःखमित्यर्थः। अष्टकर्मपिण्डमिति भावः। तस्य ओः पीडितं निराकरणं असौः। असा वा असवि वा त्रयोदशे चतुर्दशे वा गुणस्थाने कर्मनिराकरणेन वर्द्धमानः इति असौवर्द्धमानः। पुनः अप्यजांकः। नास्ति पिर्भयं येषां ते अपयः। निर्भयाः स्याद्वादिनः। अथवा न पिः पीडितारावो येषां ते अपयः। जिष्णवोऽनुत्तरवादिनः। "पिः पुंसि पीडितारावे सागरे सोदरे दरे"। अजाश्चतुर्बोधधराः। अपयश्च अजाश्च अप्यजास्तेंऽके यस्य सोप्यजांकः। पुनः मल्लिः। मल्लते विषयादिष्वात्मानं यतते तन्मलं अज्ञानम्। तस्य लिर्लावो यस्मा-

दिति मल्लिः । "लिः पुंसि लावे" । पुनः नेमिः । नानां मनुष्याणां ईः नयनभ्रमः एकान्तदृष्टिरित्यर्थः । ईः कुत्सार्थेपि पापेपि निषेधे नयनभ्रमे । ना मिनोति प्रक्षेपयति दूरीकरोतीति यावत् नेमिः । डुमिञ् प्रक्षेपणे । मुहुः नमिः । त्रिभुवनेशान् नामयति नमिः । पुनः सुमतिः केवलज्ञानविभ्राजमानः । पुनः सत अविनश्वरः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां श्रीभट्टारकनरेन्द्रकीर्ति-मुख्यशिष्यपंडितजगन्नाथकृतायां षष्ठजिनपद्मप्रभस्तुतिः समाप्ता ।

अब छट्ठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभ की स्तुति लिखते हैं ।

अन्वयः—अथ श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः अवृषभजिनपतिः श्री-द्रुमांकः धर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शान्तिः अरः विमलविभुः असौवर्द्धमानः अप्यजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत् पद्मप्रभः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु ।

अर्थ-अथ शब्दका अर्थ अनंतर है । भगवान् सुमतिनाथ की स्तुतिके अनंतर पद्मप्रभकी स्तुति करते हैं । अथवा अथ शब्दका मंगल भी अर्थ होता है । अथ शब्दके द्वारा मंगल करके पद्मप्रभकी स्तुति करते हैं । जो भगवान् श्रेयान् अर्थात् श्रेष्ठ हैं । तथा जो श्रीवासुपूज्य हैं । सत्यवादी जैन तत्त्ववादी ही हो सकते हैं । जो सत्यभाषियों के द्वारा आ अर्थात् चारों ओरसे अच्छी तरह पूज्य हों उनको श्री-वासुपुज्य कहते हैं । भगवान् पद्मप्रभ भी जैन तत्त्वों को निरूपण करने वाले गणधरादिकों के द्वारा पुज्य हैं इसलिये वे श्रीवासुपुज्य हैं । तथा जो भगवान् अवृषभजिनपति हैं । वृष श्रेष्ठको और भ भोग को कहते हैं । अ का अर्थ नहीं है । जिन गणधरों को कहते हैं । जिनके पास श्रेष्ट भोग न हों ऐसे गणधरोंको अवृषभजिन कहते हैं । भगवान् पद्मप्रभ भी वज्रचामर आदि एकसौ ग्यारह निर्ग्रंथगणधरों के स्वामी थे इसलिये वे अवृषभजिनपति हैं । फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं । श्री द्रुम कल्पवृक्षोंको कहते हैं । भगवान् पद्मप्रभके समवसरणमें कल्पवृक्ष

थे इसलिये वे श्रीद्रुमांक हैं। फिर जो भगवान् धर्म की मूर्ति हैं। फिर जो भगवान् हर्य्यंक हैं। रागी जीवोंके हृदयोंको हरण करे सो हरि अर्थात् कमल है। जिनके कमल का चिन्ह हो उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। पुष्प धातुका अर्थ विकसित होना है। जो विषयोंमें विकसित हो ऐसे कामदेवको पुष्पत् कहते हैं। जिनसे आ कामदेवका अंत अर्थात् नाश हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। मुनिका अर्थ निर्ग्रंथ है, सुका अर्थ अच्छी तरह है। वृ धातुका अर्थ ग्रहण करना है। जो ग्रहण करने योग्य हो उसको वृ कहते हैं। जो मुनियोंके द्वारा अच्छी तरह ग्रहण करने योग्य हो ऐसे तपश्चरणको मुनिसुवृ कहते हैं त का अर्थ तस्कर अथवा चोर है। जो मुनियोंके तपश्चरणको हरण करनेवाले हों ऐसे क्रोधादिक कषायोंको मुनिसुव्रत कहते हैं। जीतनेवालेको जिन कहते हैं। क्रोधादिक कषायोंको जीतें उनको मुनिसुव्रत जिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्व हैं श्रीसुपार्श्व समीपको कहते हैं। भगवान् पद्मप्रभकी वाणी भव्यजीवोंकेलिये अनन्त है—इस प्रकारकी स्तुति जिनके समीपमें सदा होती रहे उनको अनन्तवाक्-श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। शा लक्ष्मीको कहते हैं, अन्ति समीप को कहते हैं। भगवान् पद्मप्रभके समवसरणमें अनेक प्रकारकी लक्ष्मी विद्यमान थी इसलिये वे शान्ति हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। अ ज्ञानको कहते हैं और र सूर्य को कहते हैं। भगवान् पद्मप्रभ अपने केवलज्ञानसे मिथ्यात्व अंधकारका नाश करनेके लिये सूर्य हैं इसलिये वे अर हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। आठों कर्म-रूपी मलको मल कहते हैं। जहांपर आठों कर्मरूपी मल नष्ट होगये हों ऐसे मोक्षको विमल कहते हैं। जो विमल अर्थात् मोक्षके विभु अर्थात् स्वामी हों उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं। स सुखको कहते हैं। सुखके अभावको अर्थात् दुःखोंको अस कहते हैं। दुःखके कारण आठों प्रकारके कर्म हैं इसलिये आठों प्रका-

रके कर्मोंके समुदायको अस कहते हैं। ओ का अर्थ पीडित करना निराकरण करना अथवा नाश करना है। जहांपर कर्मोंका निराकरण वा नाश किया जाय ऐसे तेरहवें अथवा चौदहवें गुणस्थानको असो कहते हैं। जो चौदहवें गुणस्थानमें समस्त कर्मोंको नाशकर बढते रहें उनको असोवर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अप्यजांक हैं। पि का अर्थ भय है। जिनके पि अर्थात् भय न हो ऐसे निर्भय रहनेवाले स्याद्वादियोंको अपि कहते हैं। अथवा पि का अर्थ पीडित होकर रोनेके शब्द का है। जो पीडित होकर न रोवें, सबको जीतने वाले हों ऐसे स्याद्वादियोंको अपि कहते हैं। जो जन्ममरणसे रहित हों ऐसे गणधरों को अज कहते हैं। तथा अंक समीपको कहते हैं। जिनके समीपमें वा समवसरणमें स्याद्वादी और चारों ज्ञानको धारण करने वाले गणधर हों उनको अप्यजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मलि हैं। जो आत्माको विषयादिकोंमें लगादेवे ऐसे अज्ञानको मल कहते हैं। लिका अर्थ नाश है। अज्ञानरूपी मल जिनसे नाश हो उनका नाम मलि है। फिर जो भगवान् नेमि हैं। न का अर्थ मनुष्य है। ई का अर्थ नेत्रोंका भ्रम अथवा एकांत दृष्टि है। और मि का अर्थ दूर करना है। जो मनुष्योंकी एकान्त दृष्टिको दूर करें उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान नमि हैं। जो तीनों लोकों के इन्द्रोंसे नमस्कार करावें उनको नमि कहते हैं। भगवान् के चरण कमलोंको सब इन्द्र नमस्कार करते हैं इसलिये वे नमि हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। जिनके उत्तम ज्ञान हो उनको सुमति कहते हैं। फिर जो भगवान् सत्–कविनश्वर हैं। ऐसे श्रीपद्मप्रभ स्वामी छट्ठे तीर्थंकर मुझ जगन्नाथपंडितको संसारके भयसे रक्षा करें।

इति पद्मप्रभजिनस्तुति।

अथ सुपार्श्वनाथस्तुतिः ।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो-
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः । अनति संसारदराद्रक्ष्यानिति अन् रत्नत्रयम् । श्रेयमाश्रयणीयमन् येषां ते श्रेयानः । ते च ते श्रीवासवः शक्रा इति श्रेयान्श्रीवासवस्तैः पूज्यः श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषेण दशधा धर्मेण भांतीति वृषभास्ते च ते जिनाः बलादयः पंचोत्तरनवतिमितगणधरास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमांकः श्रीः द्रुरशोकतरुर्येषु तानि श्रीद्रूणि अष्टप्रातिहार्याणि तेषां मां शोभामंकंतिकं गच्छति श्रीद्रुमांकः । भूयः अथधर्मोहर्यंकः । न थानि स्तोकानि धर्माणि जिनोक्तानि अवन्ति गच्छन्तीति अथधर्मावः । उ गतौ । आद्गुणः गोतो णिन् वृद्धिः । एचोऽयवायावः । अथधर्मावः प्रबलपुण्यभाजस्ते च ते हरयः इन्द्राः चन्द्रार्काद्याः इति अथधर्मोहरयः । तेऽके यस्य सोथधर्मोहर्यंकः । अथवा अथधर्मावः समवसरणमुनयः । हरिश्चन्द्रः । अथधर्मावश्च हरिश्च अथधर्मोहरयः । तेऽके यस्य सोथधर्मोहर्यंकः । अथवा अथधर्मः पूर्णपुण्यभाक् । हर्यंकः हरिद्वर्णः । पुनः पुष्पदंतः निजकरशोभया जितः पुष्पदन्तो दिग्गजो येन स पुष्पदंतः । समुदायेषु प्रवृत्ता अवयवेऽपि वर्तंते । पुनः अमुनिसुव्रतजिनः । अमुनिभिः गृहस्थैः धर्माकर्णनार्थं सुव्रता जिना यस्य सोऽमुनिसुव्रतजिनः । पुनः अनन्तवाक् । नास्त्यन्तो नाशो यस्य सोनन्तो मोक्षः । अनन्ताय कर्मनिर्वृत्तये वाग् यस्य सोनन्तवाक् । भवद्वाक्योक्ति विना मोक्षाभावः । पुनः शांतिः । शं अनंतसुखं अंतति बध्नाति शान्तिः ।

अति बंधने । भूयः पद्मप्रभः । पद्मैः सुररचितकनककमलैः प्रभाति गमनावसरे शोभते इति पद्मप्रभः । पुनः अरोविमलविभुः । “ रः सूर्येऽग्नौ धने कामे ” । न रः काम इति अरः शीलं । अथवा अरं अरतं ब्रह्मचर्यमित्यर्थः । नामैकदेशो नाम्नि । अर एव उः समुद्र इति अरोः शीलसागर इत्यर्थः । अरावा शीलजलधिना विमला अत्यन्तनिर्मलास्तेषां विभुः अरोविमलविभुः। पुनः असौवर्द्धमानः । स्वमात्मस्वरूपं विदुरिति सौवाः । तदधीते इत्यण् । न य्वाभ्यामित्यैच् । न सौवा असौवा अनात्मज्ञाः तान् वर्द्धते भिनत्ति असौ इति असौवर्द्धमानः । अपिः संभावनायाम् । पुनः अजांकः अजं मोक्षं अंकते गच्छति अजांकः । ‘ अकि गतौ ’ । भूयः मल्लिः । मदयति मत् ज्ञानावरणादिः तस्य लिर्नाशो यस्मादिति मल्लिः । पुनः नेमिः । नानां ईः कुत्सार्थः । नेः । नां मिनुते प्रक्षेपयति नेमिः । मिथ्यादृष्टिनिराकर्ता । पुनः नमिः । नमति नम् नम्रः । नम्रः इः कामो अस्मादिति नमिः । पुनः मांशुमतिः । माशब्देन प्रत्यक्षपरोक्षप्रमाणद्वयम् । म एव सूर्यः इति माः प्रमाणसूर्यः । अंशवः किरणाः नवनवा इति मांशवः । तद्वन्मतिर्यस्य स मांशुमतिः । एवंविशेषणविशिष्टः श्रीसुपार्श्वः श्रीसुपार्श्वनामा सप्तमार्हन् स्वस्तिकांकः । पुनः सन् शाश्वतः । श्रीजगन्नाथधीरमवतादिति । श्रीजगन्नाथाश्च धीराश्च श्रीजगन्नाथधीरम् । वा जगन्नाथनामानं भक्तम् ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्य-पण्डितजगन्नाथकृतायां श्रीसप्तमतीर्थंकरस्य सुमतिजिनस्य स्तुतिः समाप्ता।

आगे सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—श्रेयान्श्रीवासुपुज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मोहर्यंकः (अथधर्मः हर्यंकः) पुष्पदन्तः अमुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् शान्तिः पद्मप्रभः अरोविमलविभुः असौवर्द्धमानः अपि अजांकः मल्लिः नेमिः मांशुमतिः सन् श्रीसुपार्श्वः जगन्नाथधीरं अवतु।

अर्थ---जो भगवान् श्री सुपर्श्वनाथ स्वामी श्रेयान्श्रीवासुपूज्य हैं। अन् धातुका अर्थ रक्षा करना है। जो संसारके भयसे भव्य जीवोंकी रक्षा करें ऐसे रत्नत्रयको अन् कहते हैं। आश्रय करने योग्य को श्रेय कहते हैं। और इंद्रोंको श्रीवासु कहते हैं। जो रत्नत्रयको अवश्य धारण करें ऐसे इंद्रोंको श्रेयान्श्रीवासु कहते हैं। श्रेयान्श्रीवासु अर्थात् इंद्रोंके द्वारा पूज्य हों उनको श्रेयान्श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। वृष धर्मको कहते हैं, भ शोभाको कहते हैं। जो उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारके धर्मसे शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं। तथा जिन गणधरोंको कहते हैं। जो गणधर देव दश प्रकारके धर्मसे शोभायमान हों उनको वृषभजिन कहते हैं। जो ऐसे गणधरोंके स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। श्रीद्रु अशोकवृक्षको कहते हैं। जिनमें अशोक वृक्ष शामिल हो ऐसे आठों प्रातिहार्योंको भी श्रीद्रु कहते हैं। उनकी शोभाको जो प्राप्त हों उन्हें श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् अधधर्मोहर्यंक हैं। अ का अर्थ थोडा है और धर्मका अर्थ भगवान जिनेंद्र देवके कहे हुए वचन हैं। थोडे धर्मको अधर्म कहते है तथा अ का अर्थ नहीं है। जो थोडा धर्म न हो, पूर्ण धर्म हो उसको अधधर्म कहते हैं। उ धातुका अर्थ गमन करना वा प्राप्त होना है। जो भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए पूर्ण धर्मको प्राप्त हों ऐसे अत्यंत पुण्यशाली जीवोंको अधधर्मो कहते है। हरिका अर्थ इन्द्र चक्रवर्ती आदि है। अत्यंत पुण्यवान् इन्द्र चक्रवर्ती आदिको अधधर्मोहरि कहते हैं। ऐसे अत्यंत पुण्यवान् इन्द्र चक्रवर्ती आदि जिनके अंक अर्थात् समीप में वा समवसरणमें हों उनको अधधर्मोहर्यंक कहते हैं। हर्यंक व अधधर्मका पाठ अलग भी रक्खा जा सकता है। जो पूर्ण पुण्यको प्राप्त हुए हों वे अधधर्म हैं और जिनके शरीरकी कांति हरित वर्णकी हो उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान सुपार्श्वनाथ स्वामीके समवसरणमें भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए पूर्ण धर्मको प्राप्त होनेवाले इन्द्र चकवर्ती आदि

अत्यंत पुण्यशाली जीव भी थे तथा महा मुनिराज और चन्द्रादिक देव भी थे इसलिये वे अधधर्मोहर्यक कहे जाते हैं। अथवा वे पूर्ण पुण्यको प्राप्त हुए हैं इसलिये वे अघधर्म हैं और उनके शरीरकी कांति हरित वर्णकी थी इसलिये वे हर्यक कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। पुष्पदन्त दिग्गजको कहते हैं। भगवान् सुपार्श्वनाथने अपनी भुजाओं की शोभासे दिग्गज हाथियोंकी भी सुड जीत ली है। इसलिये वे पुष्पदन्त कहे जाते हैं। यह न्याय है कि जो समुदायमें प्रवृत्त होता है वह अवयवमें भी प्रवृत्त होता है। इस हिसावसे वे अपनी भुजाओंकी शोभासे हाथीकी सूंडको जीतते हैं इसलिये वे हाथीको भी जीतने वाले कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अमुनिसुव्रतजिन हैं। जो मुनि न हों उनको अमुनि कहते हैं। गृहस्थ मुनि नहीं हैं इसलिये गृहस्थों को अमुनि कहते हैं। सुव्रत शब्दका अर्थ घिरे रहना, चारों ओर रहना है। जिन गणधरोंको कहते हैं। जिनके गणधरदेव धर्म सुननेके लिये गृहस्थोंसे सदा घिरे रहें उनको अमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनंतवाक् हैं। जिसका कभी नाश न हो उसको अनंत कहते हैं। मोक्षका कभी नाश नहीं होता। जो जीव मुक्त हो जाता है वह सदा मुक्त ही रहता है। इसलिये मोक्ष अनंत है। जिनकी वाणी मोक्षका कारण हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। शं सुखको कहते हैं और अति धातुका अर्थ बांधना है। जो सुखको बांधे-प्राप्त करें उनको शांति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। विहार करते समय भगवानके चरणकमलोंके नीचे जो सुवर्णमयी कमलों की रचना होती है उनके द्वारा जो सुशोभित हों उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अरोविमलविभु हैं। रका अर्थ कामदेव है। रके अभावको अर कहते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे कामका अभाव होता है इसलिये ब्रह्मचर्य अथवा शील व्रतको अर कहते हैं। अथवा रका अर्थ रत है। अर्थात् रत न होना ब्रह्मचर्यका पालन करना अर कहलाता है। उ का अर्थ समुद्र है जो अर अर्थात् शील-

का समुद्र हो उस शीलसागरको अरो कहते हैं। जो शीलसागरके द्वारा विमल अर्थात् निर्मल हों—ब्रह्मचर्य के पालन करनेसे जिनका आत्मा अत्यंत पवित्र हो उनको अरोविमल कहते हैं। जो अरो-विमलके स्वामी हों उनको अरोविमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं। जो अपने आत्माके स्वरूपको जानें उनको सौव कहते हैं। जो अपने आत्माके स्वरूपको न जानें ऐसे अ-ज्ञानी वा मिथ्याज्ञानियोंको असौव कहते हैं। ऋध धातु का अर्थ भेदन करना है। जो अज्ञानी वा मिथ्याज्ञानका नाश करें उनको असौवर्द्धमान कहते हैं। अपि अर्थात् और जो भगवान् अजांक हैं। मोक्षमें जन्म मरणका सर्वथा अभाव है इसलिये मोक्षको अज कहते हैं। अकका अर्थ प्राप्त होना है। जो मोक्षको प्राप्त हों उनको अजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। ज्ञानावरणादि कर्मोंको मल् कहते हैं। लिका अर्थ नाश है। जिनसे कर्मोंका नाश हो उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। न मनुष्यको कहते हैं। ईका अर्थ कु-त्सित अथवा मिथ्यात्व है और मिका अर्थ दूर करना है। जो मनु-ष्योंके मिथ्यात्वको दूर करें उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। नमस्कार करने अथवा नम्र होनेको नम् कहते हैं। इका अर्थ इच्छा है। जिनके सामने होते ही नमस्कार करनेकी इच्छा हो उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् मांशुमति हैं। मा प्रमाणको कहते हैं। तथा अंशु किरणोंको कहते हैं। प्रमाणकी किरणें नय हैं। मति बुद्धि अथवा ज्ञानको कहते हैं। जिनका ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रमाणरूप है तथा समस्त नयरूप है उनको मांशुमति कहते हैं। मूलमें यद्यपि दन्त्य सकार है और अंशु शब्दमें तालव्य शकार है तथापि श्ले-षालंकारमें सकार शकारका भेद नहीं माना जाता है। तथा जो भगवान् सत् अर्थात् सदा शुद्ध रहनेवाले हैं, नित्य हैं। ऐसे श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी स्वस्तिकके चिन्हको धारण करनेवाले सातवें तीर्थंकर विद्वद्वर श्री जगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करो।

इस प्रकार श्रीसुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुति समाप्त हुई।

अथ चन्द्रप्रभस्तुतिः ।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो-
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौवर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—हर्यंकः हरिश्चन्द्रोऽके यस्य स हर्यंकः चन्द्रांकः । उक्तं च—' इत्यामरैर्वः शशिलांछना जिनः ' । श्रीचन्द्रप्रभः अष्टमतीर्थराट् । श्रीजगन्नाथधीरमवतादिति संबंधः । श्रीजगंति त्रिभुवनानि नाथा राजादयः धीरा जिनमतपंडिताः । श्रीजगन्ति च नाथाश्च धीराश्च श्रीजगन्नाथश्च रस्तु । समाहारापेक्षयैकत्वम् । कर्मतापन्नं । अथवा श्रीजगन्नाथा इन्द्रादयः । धीरा महामुनीश्वराः । श्रीजगन्नाथाश्च धीराश्च श्रीजगन्नाथधीरं । अथवा श्रीजगन्नाथधीरं जगन्नाथनामानं पण्डितं अवतात् निश्चयेन रक्षतु । किंविशेषणगोचरः श्रेयान् नितरां प्रशस्यः । पुनः श्रीवासुपूज्यः । स तु सर्वैःपूज्यः परं तेन महाभक्तिरकारि । स्तुतिश्च विहिता । " चन्द्रप्रभेति नामेदमपरीक्ष्य हरिर्व्यधात " इत्युक्तं महापुराणोत्तरखण्डे । ततस्तन्नामात्र न्याय्यं पूर्वग्रन्थानुसारित्वात । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषभाः श्रेष्ठाश्च ते जिनदत्ताद्याश्चिनवतिमितगणधरास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । भूयः श्रीद्रुमांकः श्रीद्रुरशंकोस्ति येषु तानि श्रीद्रूणि अष्टप्रातिहार्याणि । तेषां मा लक्ष्म रति श्रद्रुमा सा अंके समीपे यस्य स श्रीद्रुमांकः । महापुराणेप्यस्य प्रातिहार्यवर्णनम् । भूयः अथधर्मः । थः मिथ्यावाचकश्चासौ धर्मः थधर्मः । थो मिथ्यावाचके श्रान्ते । न थधर्मो यस्य सोथधर्मः । सम्यग्धर्म इत्यर्थ । पुनः पुष्पदन्त उज्वलः कुन्दपुष्पाणीव दन्ता यस्य स पुष्पदन्तः । संख्यासुपूर्वत्वाभावाद वयसि दन्तस्य दतृ इति सूत्रेण दत्रादेशो न स्यात । पुनः मुनिसुव्रतजिनः । मुनिभिः स्वतत्त्वाभिमुखैर्व्रियते उपादीयते

इति मुनिसुव्रा अहिंसादिः । वृञ् वरणे । क्विप् प्रत्ययः । ऋदुशन-स्पुरुदंशोनेहसां चेत्यनङ् । अलोन्त्यात्पूर्व उपधा । सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ इति दीर्घः । अपृक्त एकालप्रत्ययः, हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् इति सुलोपः । मुनिसुव्रा अहिंसादिना तपश्चरणेन तः तस्करः जिनः मन्मथः अस्मादिति मुनिसुव्रतजिनः । तस्करस्य पलायनत्वमेव । वीतरागो जिनः प्रोक्तो जिनो नारायणस्तथा । कंदर्पः स्याज्जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली । पुनः अनन्तवाक् । रत्नत्रयं विना जीवेभ्योऽनन्तं संसारं वक्ति अनन्तवाक् । भो जीवा भवद्भी रत्नत्रयमुपादेयमिति वक्ति अन्यथा अनन्तसंसार । मुहुः श्रीसुपार्श्वः । श्रीसुपार्श्वे इव श्रीसुपार्श्वः । शरीरकान्त्या-भिन्नः । समवसरणादिभिर्वा तादृगेव, तदनंतर धर्मप्रवर्तकत्वात् । मुहुः शान्तिः निजदेहोज्वलकान्त्यामृतेन जनकष्टं शान्तयति शान्तिः । तदुक्तं चन्द्रप्रभकाव्ये " स पातु यस्य स्फटिकोपलप्रभे प्रभावितानेविनिमग्नमूर्तिभिः । विदिद्युते दुग्धपयोधिमध्यगैरिवा-मरर्वैः शशिलाञ्छनो जिनः " । पुनः पद्मप्रभः । सितेत्यध्या-हार्यम् । सितपद्मवत्प्रभा यस्य स पद्मप्रभः । पुनः अरोविमलविभुः । अरं शीलं अवन्ति गच्छन्ति इति अरावः उ गतौ । महायलयः । ते विमलाः स्तुत्या येषां ते अरोविमलाः शीलभृन्निर्ग्रन्थमुनिभक्ता नराः । तेषां विभुः अरोविमलविभुः । पुनः असौवर्द्धमानः । स्व-मात्मानं विदन्तीति सौवाः । जैनागमोद्धृतपरमात्मरुचयः । तद-धीते तद्वेदेत्यण । न य्वाभ्यां इत्यैच् । न सौवा असौवा अनात्मज्ञाः पापिनो मीमांसकादयः । ' अप्पाणमयाणंता मूढा दु पण्णवादिनो केई ' इति गाथासुकथितलक्षणांस्तान दुष्टान ऋधते छेदयति असौवर्द्धमानः । ऋधते हिनस्ति वा असौवर्द्धमानः । ऋधु हिंसायां । लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे इति शानच् । लशक्वतद्धिते इति श इत् । ततः कर्तरि शब्विति शप् । ततः आने मुक् इति मुक् च । सिद्धः असौवर्द्धमान इति । ग्रन्थान्तरेपि " स्व-

पक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः । प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः ” इति सत्यं परवादिखण्डनम् । पुनः अप्यजांकः । अपयः असोदराः अन्योन्यद्वेषिणः । ते च ते अजा अजादय इति वक्तव्यम् अप्यजा मार्जाराखुवर्वीकरकंठीरवमृगादय एकीभावं गताः सन्तोंऽके कोष्ठे यस्य सोप्यजांकः । तदुक्तम् । “ सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशात् केकिकान्ता भुजङ्गम् । वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति श्रित्वा शाम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् । ” इत्यादि । पुनः मल्लिः ! मल् परवस्तुनि ममत्वं पुत्रमित्रकलत्रादिमोहः । तस्य लिर्नाशो जनेषु यस्मादिति मल्लिः । पुनः नेमिः नीयन्ते प्राप्यन्ते सुरनरोरगेन्द्रादिविभूर्ति प्राणिनो धर्मपरा येनासौ नेमिः । पुनः नमिः । न सन्ति मियः हिंसादयो यस्मादिति नमिः । भूयः मांशुमतिः । “ मायाविनि वृथामंत्रे मारणंप्रतिदानयोः ” । मा मायाविनः त एव आः अग्नयः इति माः । अकः सवर्णे दीर्घः । मानां तेषां तेजोहानये अंशुः सूर्यनिभ इति मांशुः । ‘ अंशुः सूर्यांशवः कराः ’ इत्यमरः । अग्निविशेषणत्वात्तेषां अप्रतपमानताप्युक्ता । यथा सति सूर्येऽग्निरस्ति परं निष्प्रतापः । मांशुर्मतिर्यस्य स मांशुमतिः । पुनः सत् प्रशस्तः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्य-पण्डितजगन्नाथकृतायां श्रीचंद्रप्रभस्याष्टमतीर्थंकरस्य स्तुतिः समाप्ता।

अब आगे आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनमतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः अरोविमलविभुः असौवर्द्धमानः अप्यजांकः मल्लिः नेमिः नमिः मांशुमतिः सत् हर्यंकः श्रीजगन्नाथधीरं अवतु ।

अर्थ—जो चन्द्रप्रभ भगवान् श्रेयान अर्थात् अत्यंत प्रशंसनीय हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्रीवासु ऐशान इन्द्रको कहते हैं। ऐशान इन्द्रने श्रीचन्द्रप्रभ स्वामीकी बहुत ही भक्ति की थी तथा "चन्द्रप्रभेति नामेदमपरीक्ष्य हरिर्व्यधात्" अर्थात् इन्द्रने भगवान्‌का चन्द्रप्रभ यह नाम बिना किसी परीक्षा किये ही रक्खा था। इसप्रकार इन्द्रने चन्द्रप्रभकी बहुत कुछ स्तुति की ऐसा महापुराणके उत्तर खंडमें स्पष्ट लिखा हुआ है। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। वृषभ श्रेष्ठ को कहते हैं। जिन गणधरोंको कहते हैं और पति स्वामीको कहते हैं। जो श्रेष्ठ गणधरोंके स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। श्रीद्रु अशोकवृक्षको कहते हैं। जिनमें अशोक वृक्ष भी शामिल हो ऐसे आठों प्रतिहार्योंको भी श्रीद्रु कहते हैं। मा का अर्थ लक्ष्मी वा शोभा है। आठों प्रातिहार्योंकी शोभाको श्रीद्रुमा कहते हैं। जिनके समवसरणमें आठों प्रातिहार्योंकी शोभा हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् अथधर्म हैं। थका अर्थ मिथ्या है। मिथ्या धर्मको थधर्म कहते हैं। जिनका धर्म मिथ्या न हो यथार्थ हो उनको अथधर्म कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। पुष्प फूलोंको कहते हैं और दन्तका अर्थ दांत हैं। जिनके दांत पुष्पोंके समान उज्वल वर्णके हों उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। वृ धातुका वरण वा स्वीकार करना अर्थ है। जो मुनियोंके द्वारा स्वीकार किया जाय ऐसे अहिंसा महाव्रत आदि तपश्चरणको मुनिसुव्रा कहते हैं। त का अर्थ तस्कर है और जिन कामदेवको कहते हैं। "वीतरागो जिनः प्रोक्तो जिनो नारायणस्तथा। कंदर्पः स्याज्जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली"। अर्थात् वीतराग परम देव श्री तीर्थंकर भगवानको जिन कहते हैं। नारायणको जिन कहते हैं। कामदेव को जिन कहते हैं। और सामान्यकेवलीको भी जिन कहते हैं। जिनके प्रभावसे मुनियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य अहिंसादि

तपश्चरणके द्वारा जिन अर्थात् कामदेव त अर्थात् तस्कर हो जाय चोरकी तरह भाग जाय उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। अनन्तका अर्थ संसार है। और वाक्का अर्थ वाणी है। जो रत्नत्रयके विना जीवोंको अनंत संसार का उपदेश दें उनको अनंतवाक् कहते हैं। भगवान चन्द्रप्रभने भी जीवोंको उपदेश दिया था कि हे भव्य जीवो तुम्हारे लिये रत्नत्रय ही ग्रहण करने योग्य है। यदि तुम लोग रत्नत्रयको ग्रहण न करोगे तो तुम्हें अनंत संसारमें परिभ्रमण करना पड़ेगा। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जो श्रीसुपार्श्व तीर्थंकरके समान हों उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। श्रीचन्द्रप्रभ भगवानने श्रीसुपार्श्वनाथके बाद उनके ही समान धर्मकी प्रवृत्ति की इसलिए वे भी श्रीसुपार्श्व हैं। अथवा समवसरणादि विभूतिके द्वारा वे श्रीसुपार्श्वनाथके समान थे इसलिए भी वे श्रीसुपार्श्व हैं। अथवा उनके शरीरकी कांति श्रीसुपार्श्वनाथसे भिन्न होकर भी उनके ही समान सुंदर थी इसलिये वे श्रीसुपार्श्व कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। जो अपने शरीरकी निर्मल कांतिरूपी अमृतसे लोगोंके कष्टोंको शांत करदें दूर करदें उनको शान्ति कहते हैं। श्रीचन्द्रप्रभ काव्यमें लिखा भी है कि—भगवान् चन्द्रप्रभके शरीरकी कांति स्फटिक मणिकी कांतिके समान अत्यंत श्वेत है। उसमें खड़े हुए देव ऐसे मालूम हो रहे थे मानो क्षीरसागरके मध्यमें ही खड़े हों। ऐसे चन्द्रमाके चिन्हसे सुशोभित श्री चन्द्रप्रभ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करो। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। भगवान् चन्द्रप्रभके शरीरकी कांति सफेद कमलके समान अत्यंत शुभ्र और सुंदर है इसलिये वे पद्मप्रभ कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् अरोविमलविभु हैं। र का अर्थ कामदेव है। रके अभावको अथवा शीलव्रत पालन करनेको अर कहते हैं। उ धातुका अर्थ गमन करना वा प्राप्त होना है। जो ब्रह्मचर्यको पालन करें, पूर्ण शीलव्रतको धारण करें ऐसे महा मुनियोंको अरो कहते हैं। ऐसे महा मुनिराज जिनके द्वारा विमल अर्थात् स्तुति करने योग्य हों जो ऐसे

मुनियोंकी स्तुति करें ऐसे निर्ग्रंथ मुनियोंके परम भक्त हों ऐसे सम्यग्दृष्टी श्रावकोंको अरोविमल कहते हैं । ऐसे भक्तोंके जो स्वामी हों उनको अरोविमलविभु कहते हैं । फिर जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं । सौ आत्माको कहते हैं वा जाननेको कहते हैं । जो सौ अर्थात् आत्माके स्वरूपको वा अर्थात् जानें सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत आगममें कहे हुए परमात्माके स्वरूपमें जो प्रेम करें उनको सौवा कहते हैं । जो आत्मके स्वरूपको न जानें, सर्वज्ञ वीतराग के कहे हुए वचनोंमें विश्वास न करें ऐसे मीमांसक आदि मिथ्यादृष्टियोंको असौवा कहते हैं । तथा ऋध धातुका अर्थ छेदन करना है । जो ऐसे दुष्ट जीवोंको छेदन करें उनकी अज्ञानताको दूर करें उनको असौवर्धमान कहते हैं । अन्य शास्त्रोंमें लिखा भी है— 'स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्‌सिंहनादैर्विमदा बभूवुः । प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः' । अर्थात् जिसप्रकार, जिनके गंडस्थल बहते हुए मदसे गीले हो रहे हैं ऐसे मदोन्मत्त हाथी सिंहकी गर्जना सुनते ही मदरहित हो जाते हैं उसी प्रकार अपने पक्षकी रक्षा करने रूप मदसे जो मदोन्मत्त हो रहे हैं ऐसे अनेक प्रतिवादी लोग भगवान् चन्द्रप्रभ की सिंहकी गर्जनाके समान होनेवाली दिव्यध्वनि को सुनकर मदरहित होगये थे । ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूं । फिर जो भगवान् अप्यजांक हैं । अपि शब्दका अर्थ है परस्पर द्वेष करने वाले । अज शब्दका अर्थ है बकरी सिंह चूहा बिल्ली सर्प न्योला आदि । परस्पर स्वभावसे ही बैर रखनेवाले जीवोंको अप्यजा कहते हैं । जिनके समीपमें परस्पर विरोधी जीवभी हों उनको अप्यजांक कहते हैं । लिखा भी है । सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशात् केकिकान्ता भुजंगम् । वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् । अर्थात्

जिनका मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट होगया है, कलुषता सब नष्ट होगई है और जिन्होंने परम शान्तता धारण करली है, ऐसे महायोगियोंका आश्रय पाकर हिरणी तो पुत्र समझ कर सिंह के बच्चेको स्पर्श करती है। गाय अपना बच्चा समझकर बाघके बच्चे का स्पर्श करती है। बिल्ली प्रेमके परवश होकर हंसके बच्चे का स्पर्श करती है। और मयूरिणी सर्पका स्पर्श करती है। तथा और भी अनेक पशु अपने अपने मदको छोड-कर जन्मसे उत्पन्न हुए वैरको भी छोड देते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मोहको मल् कहते हैं। लि का अर्थ नाश होना है। जिनसे अन्य पदार्थोंमें उत्पन्न होनेवाला मोह नाश हो जाय उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जिनके द्वारा इन्द्र नरेन्द्र धरणेन्द्र आदि विभवशाली जीव भी धर्ममें तत्पर हों उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। हिंसादिक पापोंको मि कहते हैं। जिनसे हिंसादिक पाप न हों उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् मांशुमति हैं। माका अर्थ मायाचार, आका अर्थ अग्नि है। छल कपट करने वाले एक प्रकारसे अग्नि के समान हैं। तथा अंशु सूर्यको कहते हैं। जो अग्निके समान थोडेसे तेजको धारण करने वाले छली कपटी हैं उनका तेज दूर करनेके लिये जो सूर्य के समान हो उसको मांशु कहते हैं। फिर जो भगवान सत् अर्थात अत्यंत प्रशंसनीय हैं। ऐसे वे हर्य्यंक ; हरि अर्थात् चंद्रमा और अंक अर्थात् चिन्ह। जिनके चरणमें चन्द्रमाका चिन्ह है ऐसे आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी विद्वद्वर श्रीजगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करो।

इति चंद्रप्रभजिनस्तुति ॥

—ऽ=ऽ—

अथ पुष्पदन्तस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्योवृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—अथ चन्द्रप्रभस्तुत्यनन्तरं असौ पुष्पदन्तः पुष्पदन्तनामा नवमतीर्थंकरः अपरनामा सुविधिः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतादिति संबन्धः । किंलक्षणः श्रेयान् महापुरुषः । भूयः श्रीवासुपूज्यः श्रीर्लक्ष्मीस्तस्यां ईः मोहः इति श्रीः सैव वः समुद्रः इति श्रीवः । "वो दन्तोष्ठ्यस्तथौष्ठ्योपि वरुणे वारणे वरे । शोषणे पवने गंधे वासे वृंदे च वारिधौ" इति । श्रीवस्य अस् क्षेपणं इति श्रीवास् । श्रीवासः उः चित्तकों येषां ते श्रीवासवः । धनमोहाब्धिस्त्याज्य इति ब्रुवाणा आत्मज्ञास्तैः पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषभजिनपस्य इव नाभेयस्य इव तिः पूजा यस्य स वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीत् । श्रियं मुक्त्यङ्गनामयति प्राप्नोति श्रीत । इ गतौ क्विप् । ह्रस्वस्य पिति कृति तुगिति तुक् । पुनः रुमांकः । रु भये क्लीवे । रुणः भयस्य मा निवारणं अंके यस्य स रुमांकः । पुनः धर्मोहर्यंकः । धर्मस्य धर्मेण वा उः । उ अवः । सागरा इति धर्मावः । ते च ते हरय इन्द्राद्यास्तेऽके यस्य स धर्मोहर्यंकः । अथवा किंविशिष्टः अथधर्मः तीर्थंकरनामभाक् । पुनः हर्यंकः । शुक्लकान्त्या हर्यंक इव हर्यंकः । चंद्रप्रभसदृश इत्यर्थः । पुनः मुनिसुव्रतजिनः । मुनिभिः सुव्रताः सुसेविता निजभवसंबन्धाकर्णनार्थं जिना विदर्भादयोष्टाशीतिगणधरा यस्य स मुनिसुव्रतजिनः । पुनः अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः । अनन्तवाचां जीवादिपदार्थानां श्रियः सुपार्श्वे समीपे यस्य सोनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः । पुनः शान्तिः स्वशरीरोद्गतोज्ज्वलकान्तिरश्मिभिर्जी-

वानां दुःखं शान्तयति शान्तिः। पुनः पद्मप्रभः सितकमलाभः। पुनः रः गम्भीरध्वनिमान्। पुनः अविमलविभुः। विशेषेण मलं येषां ते विमलाः। न विमला अविमलास्तेषां विभुः अविमलविभुः। पुनः वर्द्धमानः। अत्र समन्तात् वृद्धैर्मान्यते इति वर्द्धमानः। पुनः अप्यजांकः। अपयो निर्भया अजादयोंके यस्य मोयमप्यजांकः। पुनः मल्लिः मल्लतेऽनन्तचतुष्टयमिति मल्लिः पुनः नेमिः। तीर्थरथ-प्रवर्तकत्वान्नेमिरिव नेमिः। अथवा नरककूपमुखाच्छादने नेमिरिव नेमिः। "नेमिस्त्रिकास्यवीनाहो मुखबन्धनमस्य यत्"। पुनः नमिः। नामयति भव्यानिति नमिः। पुनः सुमतिः सुमतिमान्। पुनः सत् शास्वतः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां सुधीजगन्नाथकृतायां नवमजिनपुष्पदन्तस्तुतिः पूर्णा।

आगे श्रीपुष्पदन्त भगवानकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—अथ श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीत् रुमांकः धर्मोहर्यंकः (अथवा अथधर्मः हर्यंकः) मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् गीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः रः अविमलविभुः वर्द्धमानः अप्यजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत्। असौ पुष्पदन्तः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु।

अर्थ—अथ अर्थात् श्रीचन्द्रप्रभ भगवानके वाद श्रीपुष्पदन्तकी स्तुति करते हैं। जो भगवान् श्रीपुष्पदन्त स्वामी श्रेयान् अर्थात् महापुरुष हैं। तिरेसठ शलाका पुरुष महापुरुष कहलाते हैं। तथा जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं। ई मोहको कहते हैं। श्री अर्थात् लक्ष्मीमें ई अर्थात् मोह करनेको श्री कहते हैं। व का अर्थ समुद्र है। लक्ष्मीमें मोह करना एक समुद्रके समान है। इसलिये लक्ष्मीके मोहरूपी समुद्रको श्रीव कहते हैं। अस्का अर्थ त्याग करना है। और उका अर्थ ननके विचार अथवा कहना है। श्रीवके अस् अर्थात् त्याग करनेको

श्रीवास् अर्थात् लक्ष्मीके मोहका त्याग करनेके लिये जिनके हृदयमें उ अर्थात् विचार है अथवा जो उसके त्याग करनेका उपदेश देते हैं ऐसे आत्माके स्वरूपको जाननेवालोंको श्रीवासु कहते हैं। जो श्रीवासुके द्वारा पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। महाराजा नाभिरायके पुत्र प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवको वृषभजिनपति कहते हैं अथवा वृषभ वृषभदेवको कहते हैं और जिनप तीर्थंकरको कहते हैं। ति शब्दका अर्थ पूजा है। जिनकी पूजा भगवान् वृषभदेवके समान हो उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीत् हैं। श्री मोक्षलक्ष्मीको कहते हैं और इत् प्राप्त होनेको कहते हैं। जो मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हों उनको श्रीत् कहते हैं। फिर जो भगवान् रुर्मांक हैं। रु भयको कहते हैं और निवारण करनेको कहते हैं। जिनके समीपमें भयका निवारण हो उनको रुर्मांक कहते हैं। फिर जो भगवान् धर्मोहर्यक हैं। धर्म दश धर्मोंको कहते हैं और उ समुद्र को कहते हैं। जो धर्मके समुद्र हों उनको धर्मो कहते हैं। इन्द्रादि हरि हैं। जिनके समीप धर्मके समुद्र ऐसे इन्द्रादिक हों उनको धर्मोहर्यक कहते हैं। अथवा वे भगवान् पुष्पदंत—अथधर्म अर्थात तीर्थंकर पदको धारण करने वाले हैं और हर्यक अर्थात् चन्द्रप्रभके समान शुक्ल कान्तिको धारण करने वाले हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। सुव्रत सेवा करने को कहते हैं और जिन गणधरों को कहते हैं। अपने भव सुनने के लिये आये हुए अनेक मुनि जिनके गणधरों की सेवा करते हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। पुष्पदंत स्वामीके विदर्भ आदि अठासी गणधर थे। फिर जो भगवान् अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व हैं। अनन्त केवलज्ञानको कहते हैं। जो केवल ज्ञानके द्वारा कहे जांय ऐसे जीवादि पदार्थों को अनन्तवाक् कहते हैं। श्री शोभाको कहते हैं और सुपार्श्व समीपको कहते हैं। जिनके समीप में समस्त पदार्थोंकी शोभा हो उनको अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान्

शान्ति हैं। जो अपने शरीर की कान्तिसे जीवों के दुःखो को शान्त करें उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। जिनकी प्रभा सफेद कमलके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान र हैं। जिनकी गंभीर ध्वनि हो उनको र कहते हैं। फिर जो भगवान अविमलविभु हैं। वि महामिथ्यात्वको कहते हैं। मल धारण करनेको कहते हैं। जो महामिथ्यात्वको धारण करें उनको विमल कहते हैं। जो विमल न हों, मिथ्यात्वको धारण न करें उनको अविमल कहते हैं। उनके विभु अर्थात् स्वामीको अविमलविभु कहते हैं। अथवा विका अर्थ अधिक है, मलका अर्थ कर्म है। जिनके कर्मोका समूह अधिक हो ऐसे मिथ्यादृष्टियोंको विमल कहते हैं जो मिथ्यात्वसे रहित हो शुद्ध सम्यग्दृष्टी हों उनको अविमल कहते हैं। जो शुद्ध सम्यग्दृष्टियोंके स्वामी हों उनको अविमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। अव चारों ओरको कहते हैं। व्याकरणके अनुसार अवके अ का लोप हो जाता है। ऋध वृद्ध पुरुषोंको कहते हैं और मान पूजाको कहते हैं। जो चारों ओरसे वृद्ध पुरुषोंके द्वारा पूज्य हों उनको वर्द्धमान कहते हैं। भगवान् पुष्पदन्त भी इंद्रादिक अनेक वृद्ध पुरुषों वा महापुरुषोंके द्वारा पूज्य हैं इसलिये वे वर्द्धमान हैं। फिर जो भगवान् अप्यजांक हैं। पि भयको कहते हैं। जिनके भय न हो उनको अपि कहते हैं। अज बकरी आदि पशुओंको कहते हैं। जिनके समीपमें सिंह बकरी आदि समस्त पशु निर्भय होकर रहते हों उनको अप्यजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मल धातुका अर्थ धारण करना है। जो अनन्त चतुष्टयको धारण करें उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। नेमि रथके धुरोंको कहते हैं। जो धर्म रथको चलानेके लिये धुरोंके समान हों उनको नेमि कहते हैं। किसीके ढकनेको भी नेमि कहते हैं। 'नेमिस्त्रिकास्यवीताहो मुखबंधनमस्य यत्' अर्थात् नेमि और त्रिका शब्दका अर्थ कुएपर ढकनेके पाटका है और वीताहोका अर्थ पनघट है। जो नरकरूपी कु-

एपर ढकनेके लिये नेमि अर्थात् ढकनेके समान हों उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं ! जो भव्य जीवोंसे नमस्कार करावें उनको नमि कहते हैं । फिर जो भगवान् सुमति हैं । जिनका ज्ञान श्रेष्ठ हो उन को सुमति कहते हैं । फिर जो भगवान सत् अर्थात् अविनश्वर हैं। ऐसे सुविधि अथवा पुष्पदन्त नामके नौवें तीर्थंकर मुझ श्रीजगन्नाथ पंडितको इस संसारके भयसे रक्षा करो.

इति श्रीपुष्पदन्त स्तुति ॥

अथ श्रीशीतलनाथस्तुतिः ।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो-
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शातिः पद्मप्रभोरेविमलविभुरसौवर्द्धमानोऽप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—असौ श्रीद्रुमांकः । श्रीद्रुमः कल्पवृक्षः अंके यस्य स श्रीद्रुमांकः । श्रीशीतलजिनदेवः श्रीजगत् त्रिभुवनमवतु । किंविशिष्टः श्रेयान् । शृ हिंसायां । शृणन्ति घ्नन्ति कर्माणीति शा शरी शरः । यद्यपि शृ वंद्योरारुरिति सूत्रं तथापि अन्येभ्योपि दृश्यते इति क्विप् । शृणां एः गोचरः यः यथार्थः अन् ज्ञानं यस्य स श्रेयान् । " एशब्देनोदिता चंद्री गोचरे गोपतावयं " " यो यथार्थे स्त्रियां च या " । पुनः श्रीवाः श्रियं मोक्षलक्ष्मीं वाति गच्छति गंता वा श्रीवाः । " नानुस्वारविसर्गौ तु चित्रभंगाय सम्मतौ " इति । पुनः सुपूज्यः त्रिजगन्नाथैः । पुनः अवृषभजिनपतिः न वृषभः श्रेष्ठः जिनः कामो येषां ते अवृषभा मुनयः तेषां पतिः अवृषभजिनपतिः। पुन अथधर्मः । " थो मिथ्यावाचके श्रान्ते शोकेथारध्ववस्तुनि " थेन शोकेनोपलक्षितो धर्मः स्वभाव इति थधर्मः । नास्ति थधर्मो यस्य सोथधर्मः अनन्तसौ-

ख्याब्धिमग्नः। पुनः अहर्य्यंकः। हरिणा यमेन अंक्यते लभ्यते इति हर्यंकः। न हर्यंकः अहर्यंकः। अन्तकान्तक इत्यर्थः। मुहुः अमुनिसुव्रतजिनः। "दीर्घहस्वौ मुमुशब्दो बन्धनार्थे त्रिलिंगिकौ"। नास्ति मुर्बन्धनं येषां ते अमवः कर्मबन्धरहिता मुनयः। अमुभिर्नि निभृतं सुष्ठुव्रता जिना अनगारादय एकाशीतिगणधरा यस्य सोऽमुनिसुव्रतजिनः। "निवेशे भृशार्थाश्रये दारकर्मण्यधं भावविन्यासकौशल्यमोक्षे। समीपे स्मृतौ बन्धने राशिदृष्टे बुधैर्मध्यभावे विरामे निरेषु"। पुनः अनंतवाक् अनंताय मोक्षाय वक्ति धर्ममित्यनन्तवाक्। पुनः श्रीसुपार्श्वः श्रीः सुपार्श्वे यस्य स श्रीसुपार्श्वः। पुनः शान्तिः शा सरस्वती अन्तौ अन्तिके यस्य स शान्तिः। नामैकदेशो नाम्नि। अन्तिशब्देनान्तिकोपादानम्। पुनः पद्मप्रभः सुवर्णवर्णः। भूयः अरः। नास्ति रो धनं यस्य सोरः निर्ग्रंथः। पुनः अविमलविभुः विशेषेण मनोवाक्काययोगेन मलं पापं येषां ते विमलाः। न विमला अविमलास्तेषां विभुरविमलविभुः। पुनः वर्द्धमानः। वं विशिष्टं अरं धर्मं दधाति वर्द्धः "ऋशब्दः पावके सूर्ये धर्मे दाने धने पुमान्" आ अरौ अरः एतानि। "अरं चारौ ऋक्षशशिः" आद्गुणः, उरण् रपरः। वर्द्धं मानं यस्य स वर्द्धमानः। पुनः अजांकः। अजैः सुदृष्टिभिरंक्यते इति अजांकः। सत्पुरुषगम्य इत्यर्थः। अपिः समुच्चये। पुनः मल्लिः। मल्लते पुण्योद्रेकात् समवसरणादिकं बिभर्त्ति मल्लिः। पुनः नेमिः। ईः मोहः तं मापति गच्छति ईमिः न ईमिः नेमिः। मोहारिरित्यर्थः। नञ्प्रतिरूपकोयं नकारः। पुनः नमिः नास्ति मिः परिमाणं यस्य नमिः अनन्तबलत्वादपरिमितः। पुनः मांशुमतिः मांशुमेषु प्रमाणसूर्येषु तिः पूजा यस्य स मांशुमतिः। पुनः सत् नाशरहितः। पुनः नाथधीः नाथैरर्हद्भिः ध्यायते इति नाथधीः। कथं अं अंगीकृत्य।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां विद्वज्जगन्नाथकृतायां श्रीशीतलनाथजिनस्तुतिः।

दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवाः सुपूज्यः अवृषभजिनपतिः अधधर्मः अहर्यंकः पुष्पदंतः अमुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शांतिः पद्मप्रभः अरः अविमलविभुः वर्द्धमानः अजांकः अपि मल्लिः नेमिः नमिः मांसुमतिः सत् नाथधीः असौ श्रीद्रुमांकः श्रीजगत् अं अवतु।

अर्थ—जो भगवान् श्रीशीतलनाथ स्वामी श्रेयान् हैं। श्रृ धातुका अर्थ हिंसा करना है। जो कर्मोंको नाश करें उनको श्रृ कहते हैं। ए शब्दका अर्थ गोचर है। इसी प्रकार य शब्दका अर्थ यथार्थ है। यही शब्द स्त्री लिंगमें या बन जाता है। तथा अन् शब्दका अर्थ ज्ञान है। जिनका यथार्थ ज्ञान कर्मोंके नाश करनेवालोंके गोचर हो—सर्वज्ञ ही जिनके ज्ञानको जान सकें उनको श्रेयान् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीवाः हैं। श्री का अर्थ मोक्षलक्ष्मी है और वा का अर्थ गमन करना वा प्राप्त होना है। जो मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हों उनको श्रीवा कहते हैं। यद्यपि अंतमें विसर्ग नहीं है तो भी चित्र श्लोकोंमें यह दोष नहीं माना जाता। लिखा भी है "नानुस्वारविसर्गौ तु चित्रभंगाय सम्मतौ" अर्थात् अनुस्वार और विसर्गोंसे किसी प्रकारका चित्रभंग नहीं होता है। फिर जो भगवान् सुपूज्य हैं। तीनों लोकोंके सब इन्द्र भी उनकी पूजा करते हैं। फिर जो भगवान् अवृषभजिनपति हैं। अ का अर्थ नहीं है। वृषभका अर्थ श्रेष्ठ है, जिन शब्दका अर्थ कामदेव है। जो कामदेवका त्याग करदें ऐसे मुनियोंको अवृषभजिन कहते हैं। उनके जो पति अर्थात् स्वामी हों उनको अवृषभजिनपति कहते हैं। शोकसे मिले हुए धर्म अर्थात् स्वभाव को अधधर्म कहते हैं। जिनका स्वभाव शोकसे मिला हुआ न हो उनको अधधर्म कहते हैं। भगवान् शीतलनाथका स्वभाव भी शोकसे रहित है और अनन्त सुखसागरमें निमग्न है इसलिये उनको अधधर्म कहते हैं। फिर जो भगवान् अहर्यंक हैं। हरि शब्दका अर्थ यम है। और अंक शब्दका अर्थ प्राप्त होना है। जो यमके द्वारा प्राप्त हों उनको हर्यंक कहते हैं। जो यमके द्वारा कभी प्राप्त न हों

उनको अहर्यक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जो अपनी भुजाओंसे दिग्गजोंकी सूंड को जीतें उनको पुष्पदंत कहते हैं। अथवा पुष्यत् शब्दका अर्थ विकसित होना है। और अंतशब्दका अर्थ धर्म है। जिनका धर्म सदा विकसित होता रहे उनको पुष्पदंत कहते हैं। फिर जो भगवान् अमुनिसुव्रतजिन हैं। मुका अर्थ बंधन है। जिनके कर्मोंका बंधन न हो ऐसे मुनियों को अमु कहते हैं। नि का अर्थ भृश वा अत्यंत है। सुव्रतका अर्थ घिरे रहना वा साथ रहना है। और जिन शब्दका अर्थ गणधर मुनि है; जिनके समवसरणमें गणधरदेव कर्म-बंधनोंसे रहित ऐसे अनेक मुनियोंके साथ विराजमान हों उनको अमुनि-सुव्रतजिन कहते हैं। श्रीशीतलनाथके अनगार आदि इक्यासी गणधर थे। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। जिनकी वाणी अनन्त अर्थात् मोक्ष के लिये हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनके समीपमें लक्ष्मी वा शोभा हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। शा शब्दका अर्थ सरस्वती है और अन्ति शब्दका अर्थ अन्तिक वा समीप है। जिनके समीप सरस्वती देवी हो उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। जिसमें लक्ष्मी प्राप्त हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनके शरीरकी प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। र का अर्थ धन है। जिनके पास धन न हो उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् अविमलविभु हैं। जिनके मन बचन काय तीनों योगोंसे खूब पाप आते हों उनको विमल कहते हैं। तथा जिनके पापकर्म न आते हों ऐसे मुनियोंको अविमल कहते हैं और उनके स्वामीको अविमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। वका अर्थ विशिष्ट वा अधिक है। ऋ का अर्थ धर्म है। ऋ शब्दसे अर बन जाता है। धा धातुका अर्थ धारण करना है। जो द अर्थात् अधिक, ऋ अर्थात् धर्मको ध अर्थात् धारण करे उसको वर्द्ध कहते हैं। जिनका मान अर्थात् ज्ञान सबसे अधिक धर्म को धारण करनेवाला हो उनको वर्द्धमान कहते हैं। फिर

जो भगवान् अजांक हैं। अज शब्दका अर्थ जन्ममरण रहित सम्यग्दृष्टी है और अंक शब्दका अर्थ प्राप्त होना वा जानना है। जो जन्ममरणरहित सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा जाने जांय उनको अजांक कहते हैं। तथा जो भगवान् मल्लि हैं। मल्ल धातुका अर्थ धारण करना है। जो अपने असीम पुण्य कर्म के उदयसे समवसरणकी महा विभूतिको धारण करें उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। इ का अर्थ मोह है और मिका अर्थ प्राप्त होना है। जो मोहको प्राप्त न हों—मोहका नाश करनेवाले हों उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। न का अर्थ नहीं है और मिका अर्थ परिमाण है। जो अनन्तबलशाली होनेके कारण परिमाण रहित हैं इसलिये वे नमि कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् मांशुमति हैं। जिनकी पूजा प्रमाणरूपी सूर्यमें हो उनको मांशुमति कहते हैं। फिर जो भगवान् सत् अर्थात् नाशरहित हैं। तथा नाथधी हैं। नाथ महापुरुषोंको कहते हैं। और धि धातुका अर्थ ध्यान करना है। जो महापुरुषोंके द्वारा ध्यान किये जांय उनको नाथधी कहते हैं। ऐसे ये श्रीद्रुमांक। जिनके चरणकमलमें श्रीद्रुम अर्थात् कल्पवृक्षका चिन्ह है ऐसे श्रीशीतलनाथ भगवान् दशवें तीर्थंकर इस जगत अर्थात् तीनों लोकोंको अं अर्थात् स्वीकार कर इस संसारके भयसे रक्षा करें।

इति श्रीशीतलनाथस्तुति।

—ऽ=ऽ—

अथ श्री श्रेयांसनाथस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौवर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—श्रेयानपि एकादशतीर्थभर्तापि मां श्रीजगन्नाथधीरमवतादिति योज्यम् । किंलक्षणः ? श्रीवासुपूज्यः श्रियं देवाधिपतित्वशोभामयति गच्छति श्रीः । श्रीश्चासौ वासुः इन्द्रः श्रीवासुः । तेन पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः वृषेषु धर्मेषु भाः नक्षत्रचन्द्रतुल्या उज्ज्वलत्वादिति वृषभास्ते च ते जिनाः कुंथ्वादयः सप्तोत्तरसप्ततिमिता गणपतयस्तेषां पतिर्वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमांकोथधर्म्मः । श्रीद्रुमांकः श्रुतस्कंधवनम् । उक्तंच "श्रुतस्कंधवने विहारिणीम्" । थः गम्भीरश्चासौ धर्मः थधर्मः । उवत् समुद्रवत् थधर्मः उथधर्मः । श्रीद्रुमांके उथधर्मो यस्य स श्रीद्रुमांकोथधर्मः । "अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशांगम्" इत्यादि । अथवा श्रीद्रुमांकः श्रीद्रुमांक इव श्रीद्रुमांकः शीतलनिभस्तदनंतरत्वात् अथधर्मः तीर्थंकरप्रदेशः । पुनः हर्यंकः । भव्यमनांसि हरति हरिः । समवसृत्यादि हरिरंके यस्य स हर्यंकः । अथवा हरयस्त्रिपृष्टविजयाश्वग्रीवा अंके तीर्थे यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदन्तः । पुष्यन्ति रत्नत्रयं पुष्पन्तः जैनाः तेषां अन्ताः समूहाः यस्मादिति पुष्पदन्तः । एतद्दर्शनेन जैना भवेयुरिति । अन्तशब्दः समूहे । तदुक्तं द्विसंधाने "विपुक्तं दूरमभ्रान्तैरिति" । भूयः मुनिसुव्रतजिनः मुनीन् सुवरन्ति आच्छादयन्ति मुनिसुव्रताः कामादयः तान् जयति स मुनिसुव्रतजिनः । पुनः अनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः । अनन्ताय मुक्तये वाचो येषु ते अनन्तवाचः मोक्षमार्गोपदेशकशास्त्रनिकराः । तेषां श्रियः सुपार्श्वे यस्य सोऽनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः । पुनः शान्तिः । "शं सुखे

शोरभावयोः ”। शं सुखं श्रा लक्ष्मीर्वा अन्तौ अन्तिके यस्य स शान्तिः। भूयः अरः अर्यते ज्ञानेन गम्यते सद्भिरित्यरः। पुनः विमलविभुरसौवर्द्धमानः। त्रिमलानां विभुः विमलविभुः। विमलश्चासौ विभुश्च विमलविभुः निर्मलस्वामी। रसः वीर्यम्। अर्थवशादनन्तवीर्यमित्यर्थः। “ शृंगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ” इत्यमरः। रस एव उः समुद्र इति रसौः। अनन्तवीर्यसमुद्रः। तेन वर्द्धते असौ वर्द्धमानः। विमलविभुश्चासौ रसौ वर्द्धमानश्च विमलविभुरसौवर्द्धमानः। पुनः अजांकः। अजेभ्यः शुद्धनिश्चयतो जीवेभ्यः अंकयति कथयति अजांकः। पुनः मल्लिः। मदयति मत् गर्वः। मिथ्यादृष्टीनामिति वक्तव्यम्। मदः लिर्नाशो यस्मादिति मल्लिः। मानस्तंभेक्षणमात्रमानानाशात्। पुनः नेमिः। नयन्त्यात्मस्वरूपं जीवं अस्मादिति नेमिः। पुनः नमिः हिंसारहितत्वात्त्रिजगत्त्राता। पुनः सुमतिः सुष्ठा अष्टद्रव्यमिता तिः पूजा यस्य स सुमतिः पुनः सत् श्रेष्ठः।

इति श्री चतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्य-पण्डितजगन्नाथकृतायां एकादशमजिनश्रेयसः स्तुतिः।

अब आगे श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकरकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मः (श्रीद्रुमांकः अथधर्मः) हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुरसौवर्द्धमानः अजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत् श्रेयान् अपि मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु।

अर्थ—— जो श्री श्रेयांसनाथ भगवान श्रीवासुपूज्य हैं। जो देवोंके अधिपति की शोभाको प्राप्त हुआ हो ऐसे इन्द्रके द्वारा जो पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। जिस प्रकार नक्षत्रोंमें चन्द्रमा शोभायमान होता है उसी प्रकार जो वृष अर्थात् धर्मात्मा मुनियोंमें भ अर्थात् शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं। जो अनेक मुनियोंमें शोभायमान ऐसे गणधरोंके स्वामी हों उनको वृषभ-

जिनपति कहते हैं। श्रेयांसनाथके कुंथु आदि सत्तर गणधर थे। फिर जो भगवान श्रीद्रुमांकोथधर्म हैं। श्रीद्रुम उत्तम वृक्षोंको कहते हैं। संसारमें सबसे उत्तम वृक्ष श्रुतस्कंध वा श्रुतज्ञानकी अंगपूर्व आदि शाखाएं हैं। उनके वनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। एक जगह सरस्वतीके लिए लिखा भी है "श्रुतस्कंधवने विहारिणीम्" अर्थात् जो सरस्वती श्रुतस्कंधरूपी वनमें विहार करनेवाली है। गंभीर धर्मको थधर्म कहते हैं। और जो समुद्रके समान गंभीर धर्म हो उसको उथधर्म कहते हैं। जिनका समुद्रके समान गंभीर धर्म श्रुतस्कंधरूपी वनमें विहार करनेवाला हो उनको श्रीद्रुमांकोथधर्म कहते हैं। लिखा भी है "अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशांगम" अर्थात्—यह द्वादशांग भगवान् अरहंत देवके मुखसे उत्पन्न हुआ है और गणधरोंने इसकी रचना की है। अथवा वे भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। कल्पवृक्षके चिन्हको धारण करनेवाले श्रीशीतलनाथके समान जो हों उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। तथा जो भगवान् अथधर्म हैं—तीर्थंकर हैं। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। जो भव्य जीवोंके मनको हरण करे ऐसी समवसरण आदि विभूतिको हरि कहते हैं। ऐसी विभूति जिनके समीप हो उनको हर्यंक कहते हैं। अथवा त्रिपृष्ठादि हरि हैं। वे जिनके समीप हों उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जो रत्नत्रयको पुष्ट करें ऐसे जैनियोंको पुष्पत कहते हैं। तथा अन्त शब्दका अर्थ समूह है जिनसे जैनियोंका समुदाय बढता रहे उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। जो मुनियोंको आच्छादन करें ऐसे काम क्रोधादिकको मुनिसुव्रत कहते हैं। जो काम क्रोधादिकको जीतें उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व हैं। अनन्त शब्दका अर्थ मोक्ष है। जिसमें कहे हुए वचन मोक्षके लिये हों-मोक्षमार्गका ही निरूपण करते हों ऐसे शास्त्रोंके समुदायको अनंतवाक् कहते हैं। तथा जिनके समीपमें मोक्षमार्गको निरूपण करनेवाले शास्त्रोंके समुदायकी शोभा हो उनको अनंतवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं।

फिर जो भगवान् शांति हैं। जिनके समीपमें अनन्त सुख अथवा अनन्त चतुष्टयकी अनन्त शोभा हो उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। जो सज्जनोंके द्वारा ज्ञान द्वारा प्राप्त किये जांय उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभुरसौवर्द्धमान हैं। जो रागद्वेष आदिसे रहित निर्मल मुनियोंके विभु हों उनको विमल-विभु कहते हैं। अथवा जो स्वयं कर्ममलकलंकसे रहित हों और विभु अर्थात् सबके स्वामी हों उनको विमलविभु कहते हैं। रस शब्दका अर्थ वीर्य है। वीर्यशब्दसे अनन्तवीर्य लेना चाहिये। तथा उ समुद्र-को कहते हैं। जो रस अर्थात् अनन्तवीर्य समुद्रके समान गंभीर हो उसको रसौ कहते हैं। उस रसौसे अर्थात् अनन्तवीर्यरूप समुद्र से जो वृद्धिको प्राप्त होते रहें उनको रसौवर्धमान कहते हैं। जो कर्ममल रूप कलंकसे रहित हों, सबके स्वामी हों, और अनन्तवीर्यरूप समुद्रसे सदा वृद्धिको प्राप्त होते रहते हों उनको विमलविभुरसौवर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अजांक हैं। शुद्ध निश्चय नयसे सभी जीव शुद्ध हैं और शुद्ध निश्चयसे सभी जीव अज हैं। अंकका अर्थ कथन है। जो निश्चयनयसे कहे जानेवाले सम्यग्ज्ञानी जीवोंके लिये कथन करें उनको अजांक कहते हैं फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मल्का अर्थ मद है। उसका नाश जिनसे हो उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जिनसे आत्माका स्वरूप प्राप्त हो उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। जो हिंसाका उपदेश न दें—जिनके मतमें हिंसा न हो उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। सुम अष्ट द्रव्योंको कहते हैं। और ति पूजाको कहते हैं। जिनकी अष्टद्रव्यसे पूजा की जाती हो उनको सुमति कहते हैं। तथा जो भगवान् सत् अर्थात् श्रेष्ठ हैं। ऐसे श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर मुझ श्रीजगन्नाथ पंडितको रक्षा करें। अथवा मुझको और विद्वद्वर श्रीजगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करें।

इति श्रीश्रेयांसजिनस्तुति ॥

अथ श्रीवासुपूज्यस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—असौ लोकोत्तरः श्रीवासुपूज्योपि वसुपूज्यपुत्रो द्वादशतीर्थपतिरपि । तदुक्तं महापुराणे " वासुरिन्द्रोस्य पूज्योयं वसुपूज्यस्य वा सुतः । वासुपूज्यः सतां पूज्यः । सद्ज्ञानेन पुनातु नः " । किंविशिष्टः ? श्रेयान नितरां प्रशस्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषा धर्मा एव भा भोगा येषां ते वृषभाः । वृषभाश्च ते जिनाः षट्उत्तरषष्टिमिता धर्मपुरोगमा गणधरास्तेषां पतिर्वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमांकः । श्रीद्रुमाः कल्पवृक्षाः अंके समवसरणे यस्य स श्रीद्रुमांकः । ' शालः कल्पद्रुमाणामिति वचः ' । पुनः अथधर्मः । थश्चासौ धर्मः थधर्मः । गंभीरस्वभावः । ए ब्रह्मणि थधर्मो यस्य सोथधर्मः । पुनः हर्यंकः । हरिः द्विपृष्ठाभिधो द्वितीयनारायणः अंके यस्य स हर्यंकः । अथवा भारं हरति हरिः महिषः सोंके यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदन्तः । पुष्पतः कंदर्पस्य अन्तो विनाशो यस्मादिति पुष्पदन्तः । ननु कथं पुष्पदन्तः तीर्थंकराणां पुत्रादयो भवन्त्येवेति चेदुच्यते—पुनः अरः । ' रा रमा रमणी बाला ' । नास्ति रा रमणी यस्य सोरः अविवाहितत्वात् । पुनः अमुनिसुव्रतजिनः । मुनिभिः सुव्रत इति मुनिसुव्रतः स चासौ जिनो रतिपतिः मुनिसुव्रतजिनः । न मुनिसुव्रतजिनो यस्य यस्माद्वा भव्येष्विति अमुनिसुव्रतजिनः । पुनः अनन्तवाक् अनन्तः नारायणः 'अनन्तो शेषशार्ङ्गिणो '। अनन्ते द्विपृष्ठे वाक् यस्य सोनन्तवाक् । तदनन्तरं स एव धर्मप्रवर्तकः । पुनः श्रीसुपार्श्वः श्रीभिः शोभने पार्श्वे यस्य स श्रीसुपार्श्वः । पुनः शान्तिः । भवभ्रमणोद्भूतदुःखं शान्तयति शान्तिः ।

भूयः पद्मप्रभः । पद्मवत् रक्तकमलवत् प्रभा यस्य स पद्मप्रभः । अथवा पद्मवत् पद्मरागमणेः प्रभा इव प्रभा यस्य स पद्मप्रभः । अथवा पद्मप्रभ इव षष्ठजिन इव इति पद्मप्रभो रक्तवर्णत्वात् । पुनः विमलविभुः । विशिष्टा मा लक्ष्मीर्येषु ते विमाः विमानादि-सम्पदान्विताः । ते च ते ला इन्द्रा इति विमलाः तेषां विभुः विमलविभुः । "ल इन्द्रे चलनेपिच" पुनः वर्द्धमानः असातोद्भ-तमहावायुरोगशान्तये वर्द्धमान इव वर्द्धमानः । एरण्डसमानः । पुनः अजांकः । अजः जन्मादिदूरः अंको यस्य सोयमजांकः । एतेन चतुर्दशगुणस्थाने अघातिकर्माणि निर्मूल्य मोक्षं गतवा-निति । भूयः अमल्लिः । अः कामक्रोधादिजोग्निर्विद्यते यस्य तत् अमत् पापं । तस्य लिर्नाशोऽस्मादिति अमल्लिः । पुनः नेमिः । सप्ततत्त्वोपदेशेन जनान् नामयति नेमिः । भूयः नमिः । नास्ति मी-हिंसा प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं यस्य स नमिः । पुनः सुमतिः । सुष्ठु मा प्रमा स्याद्वादलक्षणा इति सुमा । सुमा एव तिर्महाधनं यस्य स सुमतिः । "पूजायां तिः स्त्रियां तोके मनोमाने महा-धने" । पुनः श्रीजगन्ना । जगतां ना नाथ इति जगन्ना । श्री-भिरुपलक्षितो जगन्नेति श्रीजगन्ना त्रिजगदीश्वरः । "नृशब्दोपि नरे नाथे" । ना नरौ नरः इत्यादि । पुनः सत् श्रेष्ठः । एवं विधः श्रीवासुपूज्यः । अथ मां जगन्नाथमवतात् पालयतु । कथंभूतं मां धीरं । धिया बुद्ध्या त्वयि इरा वाक् यस्य स धीरस्तं धीरम् । "इरा भूवाक्सुराप्सु स्यादिति" ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारक श्री नेरन्द्रकीर्ति-शिष्यकोविदजगन्नाथकृतायां द्वादशतीर्थंकरश्रीवासुपूज्यस्तोत्रं समाप्तम् ।

बारहवें तीर्थंकर श्रीवासुपूज्यकी स्तुति ।

अन्वयः—श्रेयान् वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः अरः अमुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः

शान्तिः पद्मप्रभः विमलविभुः वर्द्धमानः अजांकः अमलिः नेमिः नमिः सुमतिः श्रीजगत्रा सत् श्रीवासुपूज्यः अथ धीरं मां अवतु ।

अर्थ— जो भगवान् वासुपूज्य स्वामी श्रेष्ठान अर्थात् अत्यन्त प्रशंसनीय हैं । फिर जो भगवान वृषभजिनपति हैं । जिनके वृष अर्थात् धर्म ही भोग हों उनको वृषभ कहते हैं । तथा ऐसे गणधरोंको वृषभ-जिन कहते हैं । जो वृषभजिनके स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते-हैं । श्रीवासुपूज्यके धर्म आदि छयासठ गणधर थे। फिर जो भगवान् श्री-द्रुमांक हैं । भगवान वासुपूज्यके समवसरणमें अनेक प्रकारके कल्प-वृक्षोंकी शोभा थी इसलिये उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं । फिर जो भगवान अथधर्म हैं । थ का अर्थ गंभीर है । और अ का अर्थ परब्रह्म है । धर्म स्वभावको कहते हैं । गंभीर स्वभावको थधर्म कहते हैं । जि-नका गंभीर स्वभाव परब्रह्ममें लीन हो उनको अथधर्म कहते हैं । फिर जो भगवान हर्यंक हैं । हरि अर्थात् द्विपृष्ठ नामके दूसरे नारायण जिनके समीपमें हों उनको हर्यंक कहते हैं । अथवा जो भार या बोझेको ढोवे ऐसे भैंसेको हरि कहते हैं । भैंसेका चिन्ह जिनकें हो उनको हर्यंक कहते हैं । श्रीवासुपूज्यके भैंसेका चिन्ह है । फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं । जो विषयोंमें लगाकर स्त्रियोंमें विकसित हो ऐसे कामको पुष्पत् कहते हैं । अन्तका अर्थ नाश है । जिनके द्वारा कामदेवका नाश हुआ हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं । कदाचित् कोई यह कहेगा कि भगवान् वासु-पूज्य कामदेवको नाश करनेवाले किस प्रकार हो सकते हैं; क्योंकि तीर्थंकरोंके पुत्र तो होते ही हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि वासुपूज्य भगवान् अर हैं । रा स्त्री को कहते हैं । जिनके स्त्री न हो उनको अर कहते हैं । भगवान् वासुपूज्य बालब्रह्मचारी थे । फिर जो भगवान् अमु-निसुव्रतजिन हैं । वृ शब्दका अर्थ आच्छादन करना है और जिन शब्दका अर्थ कामदेव है । जो मुनियोंके द्वारा सुव्रत अर्थात् आच्छादन किया जाय-नष्ट किया जाय ऐसे कामको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं । जिनके ऐसा काम देव न हो अथवा जिनके निमित्तसे भव्य जीवोंके भी

ऐसा कामदेव न हो उनको असुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनंतवाक् हैं। अनंतका अर्थ नारायण है। जिनकी वाणी अनन्त अर्थात् द्विपृष्ठ नारायणके लिए हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। भगवान् वासुपूज्यके अनन्तर नारायण द्विपृष्ठने ही उनके उपदेशका विस्तार किया था और इसप्रकार उनकी वाणी नारायणके लिए थी इसलिए उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनका समीपका भाग वा समवसरण बहुत सुशोभित हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। जो संसारके परिभ्रमणसे होनेवाले दुःखोंको शांत करें उनको शांति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। लाल कमलको पद्म कहते हैं। जिनकी प्रभा अर्थात् शरीरकी कांति लाल कमलके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। अथवा पद्मरागमणिके समान लाल वर्णकी जिनके शरीरकी प्रभा हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् वासुपूज्यके शरीरकी प्रभा भी ऐसी ही है। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। वि विशेष वा अधिकको कहते हैं और मा लक्ष्मीको कहते हैं। और ल इन्द्रको कहते हैं। जो विमानोंकी सम्पदा आदि महाविभूतिसे सुशोभित हों ऐसे इन्द्रादिक महर्द्धिक देवोंको विमल कहते हैं। भगवान् वासुपूज्य ऐसे अनेक इन्द्रोंके स्वामी हैं इसलिये उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। वर्द्धमानका अर्थ एरंड वृक्ष है। एरंडके पत्ते वायु रोगको नाश करनेवाले होते हैं। जो असाता कर्मके उदयसे होनेवाले महावायुरूपी रोगको शान्त करनेकेलिये वर्द्धमान अर्थात् एरंडके पत्तोंके समान हों उनको वर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अजांक हैं। जन्ममरणके दूर होनेको अज कहते हैं। अंक चिन्हको कहते हैं। जिनका चिन्ह जन्ममरणका दूर होना ही हो उनको अजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् अमलि हैं। कामक्रोध आदिसे उत्पन्न होनेवाली अग्निको अ कहते हैं। जिनके वा जिनमें कामक्रोधादिकसे उत्पन्न होनेवाली अग्नि हो ऐसे पापोंको अमल कहते हैं।

जिनसे अमत अर्थात् पापोंका लि अर्थात् नाश हो उनको अमल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जो तीन लोकके जीवोंसे नमस्कार करावें उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। फिर जो भगवान सुनति हैं। सु अर्थात् श्रेष्ठ मा अर्थात् ज्ञानको—श्रेष्ठ केवलज्ञान को सुभा कहते हैं। ति शब्दका अर्थ धन है। जिनके केवलज्ञान ही महाधन हो उनको सुनति कहते हैं। फिर जो भगवान श्रीजगन्ना हैं। ना शब्दका अर्थ नाथ वा स्वामी है। जो जगत्के नाथ हों उनको जगन्ना कहते हैं। और समवसरण वा अनन्त चतुष्टय आदिकी शोभा से विभूषित होते हुए जगन्ना अर्थात तीनों लोकोंके स्वामी हों उनको श्रीजगन्ना कहते हैं। भगवान् वासुपूज्य भी ऐसे हैं इसलिये वे श्रीजगन्ना कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् सत् अर्थात श्रेष्ठ हैं सर्वश्रेष्ठ हैं। और जो वासुपूज्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। महापुराणमें लिखा है " वासुरिन्द्रोस्य पूज्योयं वसुपूज्यस्य वा सुतः। वासुपूज्यः सतां पूज्यः सद्ज्ञानेन पुनातु नः।" अर्थात वासु इन्द्रको कहते हैं। जो इन्द्रके द्वारा पूज्य हों उनको वासुपूज्य कहते हैं। अथवा जो महाराज वसुपूज्यके पुत्र हों उनको वासुपूज्य कहते हैं। ऐसे सज्जनों के द्वारा पूज्य वे भगवान् वासुपूज्य अपने सम्यग्ज्ञानसे हम लोगोंको पवित्र करें।" इसप्रकार अनेक विशेषणोंसे विभूषित बारहवें तीर्थंकर ये लोकोत्तर भगवान् वासुपूज्य युक्त धीर-धी शब्दका अर्थ बुद्धि है और इरा शब्दका अर्थ वाणी है " इरा भूवाक्सुराप्सु स्यात " अर्थात् इरा शब्दका अर्थ पृथ्वी वाणी जल आदि है " जिसकी वाणी बुद्धि पूर्वक आपमें लगी हो जो बुद्धि पूर्वक आपका भक्त हो उसको धीर कहते हैं। विद्वद्वर पण्डित जगन्नाथने भी बुद्धिपूर्वक भगवानकी भक्ति की है, उनका यह महास्तोत्र बनाया है इसलिये उन्होंने अपने लिये ही धीर विशेषण दिया है, ऐसे धीर—वीरमुख्य पंडित जगन्नाथको इस संसारके भयसे रक्षा करें।

इति वासुपूज्यजिनस्तुति ॥

अथ विमलनाथस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदं तोमुनिसुव्रतजिनोनं तवाक्श्रीसुपार्श्वः ।
शातिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौवर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—विमलनाथविभुः विमलनाथस्त्रयोदशजिनो मां जगन्नाथनामानमवतात् पायात्। अन्ये भव्या यथा संसारदराद् रक्षितास्तथा मामपि । कथं अं अंगीकृत्य । किंलक्षणं मां अनम् । नास्ति अन्यो जिनात् । नो नाथो अस्य इति अनः तं अनम् । "नो नरे नः सनाथे च नो नाथेपि प्रदर्श्यते"। पुनः पुष्पदम् । पूजया जिनाय पुष्पाणि ददाति पुष्पदः तं पुष्पदम् । "तुभ्यं ददामि कुसुमैर्विशदाक्षतैश्च ।" अन्यश्च, यः पुष्पैर्जिनमर्चति-स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोर्च्यते इत्यादि बोद्धव्यम् । किंलक्षणो विमलविभुः श्रेयान् अतिशोभनः । "श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्सत्तमश्चातिशोभने"। भूयः श्रीवासुपूज्यः। श्रीवया शुभवेदनया युता असवः प्राणा येषां ते श्रीवासवः वितरणविलसनयुक्ता गृहमेधिनः। श्रीवासुभिः पूज्यः श्रीवासुपूज्यः। पुनः वृषभजिनपतिः वृषेण षोडशभावनोत्थधर्मेण भाति वृषभः । कर्मारातिजयाज्जिनः । पतिस्त्रिलोकेशः। वृषभश्चासौ जिनश्च वृषभजिनः स चासौ पतिश्च वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमां । श्रिया निजचन्द्रिकया द्रवति सुधामिति श्रीद्रुः । सचासौ मश्चन्द्रः इति श्रीद्रुमः श्रीद्रुमवद् अं परमब्रह्म यस्य स श्रीद्रुमाम् । "अमान्तो ब्रह्मसंवोद परब्रह्मप्रवाचकः" हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घादिति सुलोपः । भूयः कोथधर्मः । को ब्रह्म आत्मज्ञानं स एव उः समुद्रः इति कौः । कवि आत्मज्ञानाब्धौ थो निमग्नो धर्मः स्वभावो यस्य स कोथधर्मः । 'को ब्रह्मात्मप्रकाशार्ककेकिवायुयमाग्निषु' 'निमग्ने चाति

गम्भीरे थः'। पुनः अहर्यंकः। हं हिंसा।'हं हर्षे चैव हिंसायां'। री भ्रमः री भ्रमेरुभये'। 'हं च री च हरी। न स्तो हरी अंके यस्य सोऽहर्यंकः। वा हर्यंकः शूकरांकः। भूयः तोमुनिसुव्रतजिनः। तावः ज्ञानसागरा मुनयः। मतिश्रुतावधिधरा इति तो मुनयः। तैः सुव्रता जिनाः मेरुमन्दरादयः पंचोत्तरपंचाशद्गणधरा यस्य स तोमुनिसुव्रतजिनः। पुनः तवाक्श्रीसुपार्श्वः। तेन ज्ञानेन युक्ता वाचः इति तवाचः तासां श्रियः सुपार्श्वे यस्य स तवाक्श्रीसुपार्श्वः। पुनः शांतिः। शा शुभं अन्तो अन्तिके यस्य स शांतिः। मुहुः पद्मप्रभः हेमवर्णः। पुनः अरः जितकंदर्पः। अनेनाष्टादशसहस्रशीलत्वमुक्तं। मुहुः असौवर्द्धमानः। न सा लक्ष्मीरित्यसा। तस्या उः पीडनमित्यसौः। संसार शरणोद्भूत परमात्म गुण निरोधान दूरीकरणं स्वपदप्राप्तिरित्यर्थः। असावा वर्द्धमानः असौवर्द्धमानः 'उः समुद्रजलेनन्ते पीडने पुंसि भाषणे'। मुहुः अप्यजांकः। न सन्ति पयः सोदरा येषां ते अपयः। कृतकुटुंबत्यागाः। 'पिः पुंसि पीडितारावे सागरे सोदरे दरे'। अपयश्च ते अजा महामुनयः इति अप्यजाः। तेऽके यस्य सोप्यजाकः। भूयः मल्लिः। मदो मदस्य लिर्नाशोऽस्मादिति मल्लिः। पुनः नेमिः। जिना द्विधा व्रतमासाद्यात्मानं सुगतिं नयंति प्राप्नुवन्ति अस्मादिति नेमिः। पुनः नमिः। न मिः कामोऽस्मादिति नमिः। भूयः सुमतिः केवलज्ञानवान्। पुनः श्रीजगन्नाथधीः श्रीजगन्नाथैः धर्मस्वयंभुमघ्वादिभिर्द्धायते चिन्त्यते इति श्रीजगन्नाथधीः।

इति श्री चतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारक श्री नरेन्द्रकीर्ति अन्तेवासिविपश्चिज्जगन्नाथकृतायां त्रयोदशार्हद्विमलामलस्तुतिः पूर्तिमगात् त्रयोदशार्थश्च पूर्णः।

आगे तेरहवें तीर्थंकर श्रीविमलनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाम्कोथधर्मः अहर्यंकः तोमुनिसुव्रतजिनः तवाक्श्रीसुपार्श्वः शान्तिः

अरः असौवर्द्धमानः अप्यजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत श्रीजगन्नाथधीः विमलविभुः अनं पुष्पदं मां अं अवतु।

अर्थ—जो श्री विमलनाथ भगवान् श्रेयान् अर्थात् अत्यंत शोभायमान हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्रीका अर्थ प्राण है। जिनके असु अर्थात् प्राण शुभ वेदनीय कर्मका उदय हो, जो सातावेदनीय कर्मके उदयसे दान देने भोगोपभोग सेवन करनेमें लगे हों ऐसे गृहस्थोंको श्रीवासु कहते हैं। उनके द्वारा जो पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंसे उत्पन्न हुए धर्मको वृष कहते हैं। भ का अर्थ शोभायमान होना है। कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेवालेका नाम जिन है और तीनों लोकोंके स्वामीको पति कहते हैं। भगवान् विमलनाथ स्वामी सोलह कारण भावनाओंसे उत्पन्न होनेवाले तीर्थंकर प्रकृति के उदयसे उत्पन्न हुए पंचकल्याणक, समवसरण विभूति वा अनन्त चतुष्टय आदि धर्मसे सुशोभित हैं इसलिये वे वृषभ कहे जाते हैं। उन्होंने समस्त कर्मोंको जीत लिया है इसलिये जिन कहलाते हैं और तीनों लोकोंके स्वामी हैं इसलिये पति कहे जाते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमाम हैं। श्रीका अर्थ चन्द्रिका वा किरणें है, द्रुका अर्थ टपकाना वा बरसाना है। और म का अर्थ चन्द्रमा है। जो अपनी श्री अर्थात् किरणोंसे अमृतको द्रु अर्थात् बरसावे उसको श्रीद्रु कहते हैं और ऐसे म अर्थात् चन्द्रमाको श्रीद्रुम कहते हैं। अम् शब्दका अर्थ परब्रह्म है। जिनका अम् अर्थात् परमब्रह्म आत्मा अपनी ज्ञानरूपी किरणोंसे धर्मोपदेशरूपी अमृतको बरसानेवाले चन्द्रमाके समान हो उनको श्रीद्रुमाम् कहते हैं। फिर जो भगवान् कोथधर्म हैं। क का अर्थ—ब्रह्म अथवा आत्म—आत्मज्ञान है। क अर्थात् आत्मज्ञान उ अर्थात् समुद्रके समान हो उसको को कहते हैं। उस समुद्रके समान आत्मज्ञानमें जिनका धर्म वा स्वभाव थ अर्थात् लीन हो उनको कोथधर्म कहते हैं। फिर जो भगवान्

अहर्यक हैं। री का अर्थ श्रम है। जिनके समीपमें हिंसा और श्रम दोनो न हों उनको अहर्यक कहेंगे। अथवा वे भगवान् हर्यक हैं। हरि सुअरको कहते हैं। जिनके सुअरका चिन्ह हो उनको हर्यक कहते हैं। भगवान विमलनाथके चरणोंमें सुअरका चिन्ह है। फिर जो भगवान् तोमुनिसुव्रतजिन हैं। तो का अर्थ ज्ञानका समुद्र है। सुव्रतका अर्थ घिरे रहना वा साथ रहना है। जिनके गणधरदेव ज्ञानके समुद्र और अनेक मुनियोंके साथ विराजमान हों उनको तोमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। मेरुमन्दर आदि इनके पचपन गणधर थे। फिर जो भगवान् तवाक्श्रीसुपार्श्व हैं। त ज्ञानको कहते हैं। जो वाणी पूर्णज्ञान सहित हो उसको तवाक् कहते हैं। और जिनके समीपमें पूर्ण ज्ञानसे सुशोभित होनेवाली दिव्य ध्वनि की शोभा हो उनको तवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। शा शुभ वा कल्याणको कहते हैं और अन्ति समीप को कहते हैं। जिनके समीप शुभ वा कल्याण हों उनको शांति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनके शरीर की कांति सुवर्ण के समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। जिनके कामदेव न हो उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं। सा लक्ष्मीको कहते हैं। लक्ष्मीके अभावको असा कहते हैं। उ का अर्थ पीडन वा दूर करना है। जो असाको दूर करे उसको असौ कहते हैं। संसारके समस्त जीवोंको शरण देने वाले भगवान् अरहंतदेवके अनन्त चतुष्टय आदि गुणोंको सा अर्थात लक्ष्मी कहते हैं। उसका अभाव कर्मोंसे होना है इसलिये अनन्त चतुष्टयको ढकनेवाले कर्मोंको असा कहते हैं। और उन कर्मोंके दूर करनेको, नाश करनेको अथवा अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्तिको असौ कहते हैं। जो अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्तिसे वर्द्धमान रहें उनको असौवर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अप्यजांक हैं। पि का अर्थ सगे भाई है। जिनके सगे भाई न हों, जिन्होंने अपने सब कुटुंबका त्याग

कर दिया हो उनको ऋषि कहते हैं। अजका अर्थ महामुनि है। जिन्होंने सब कुटुंबका त्याग कर दिया है ऐसे महामुनियोंको अध्वज कहते हैं। ऐसे मुनि जिनके समीपमें हों उनको अध्वजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। मद् अहंकारको कहते हैं। उसका लि अर्थात् नाश जिनसे हो उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जिनसे शुभगतिको प्राप्त हों उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। मिका अर्थ कामदेव है। जिनके कामदेवका सर्वथा अभाव हो उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। जिनके सर्वोत्तम केवलज्ञान हो उनको सुमति कहते हैं। फिर जो भगवान श्रीजगन्नाथधी हैं। चक्रवर्ती अर्द्ध चक्री आदि राजाओंको जगन्नाथ कहते हैं। जो अनेक प्रकारकी श्री अर्थात् लक्ष्मी वा शोभासे विभूषित हों ऐसे राजाओंको श्रीजगन्नाथ कहते हैं और उनके द्वारा जिनका ध्यान किया जाय उनको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं। धर्म स्वयंभु मधु आदि उनके समवसरण में होनेवाले राजाओंने भगवान् विमलनाथका ध्यान किया है इसलिये भगवानको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं। फिर जो भगवान् सत् हैं। ऐसे श्री विमलनाथ स्वामी तेरहवें तीर्थंकर मुझ जगन्नाथको स्वीकार कर इस संसारके भयसे रक्षा करो। मैं कैसा हूं अन् हूं। न का अर्थ नाथ है। भगवान् अरहंत देवके सिवाय जिसका और कोई स्वामी न हो उसको अन कहते हैं। इसके सिवाय मैं पुष्पद् हूं। जो पूजाके द्वारा भगवान् अरहंत देवको पुष्प समर्पण करे उसको पुष्पद कहते हैं। लिखा भी है "यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते" अर्थात् जो पुष्पोंसे भगवान् अरहंत देवकी पूजा करता है वह हंसती हुई देवांगनाओं के नेत्रोंसे पूजा जाता है। इस प्रकार मैं भगवान् अरहंत देवको पुष्प समर्पण करनेवाला हूं और उन्हींको एकमात्र स्वामी माननेवाला हूं। इसलिए हे विमलनाथ स्वामिन् इस संसारके भयसे मेरी रक्षा कीजिये।

इति विमलनाथस्तुति ॥

अथ श्री अनंतनाथस्तुतिः

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभो रो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका— अथ विमलस्तुत्यनन्तरं मंगलार्थो वा । असौ अनन्तवाक् अनन्तनाथनामा चतुर्दशजिनदेवः श्रीजगन्नाथधीरवतादिति । श्रीजगति भुवने नाथस्य सर्वमतनाथस्य जैनमतस्य धीरः पण्डित इति श्रीजगन्नाथधीरस्तं श्रीजगन्नाथधीरम् । लोके जैनवादिनं पण्डितं धीर इति जातिवाचकशब्दः । जैनमतपण्डितान् इत्यर्थः । "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्यामिति" । किंविशिष्टः श्रेयानश्रीवासुपूज्यः । श्रेयं जिनं । अनं दशधा धर्मं श्रयन्ति सेवन्त इति श्रेयान् । श्रियः ते च ते वासव इन्द्रास्तैः पूज्य इति श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । उः सागरः । ऋ धर्मः । उवत गंभीरः आ (ऋ) धर्मो येषां तानि वृणि । "ऋशब्दः पावके सूर्ये धर्मे दाने धने पुमान" इति । षः श्रेष्ठ । षानि श्रेष्ठानि । भ मुडौ । भानि नक्षत्राणि इति षभानि ज्योतिर्देवाः । सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्चेति सूत्रकारवचनात । वृणि च तानि षभानि वृषभानि । जिनो नारायणः पुरुषोत्तमाभिधः । तत्सम्बन्धाद्बलभद्रप्रतिनारायणावपि । वृषभानि च जिनश्च वृषभजिनौ तत्पतिः वृषभजिनपतिः । पुनः श्रीद्रुमांकः । जीवानां श्रिये शोकनाशाय द्रुमा अशोकादयोऽके यस्य स श्रीद्रुमांकः । पुनः धर्मः अहिंसादिव्रतवान् । पुनः हर्यंकः । हरयः सिंहादयः एकीभावमिता अंके यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदन्तः । पुष्पन्तः स्याद्वादपुष्टाः

अन्ता जीवादयः पदार्था यस्य मते स पुष्पदन्तः । " अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्वव्यतीतिषु " । पुनः मुनिसुव्रतजिनः । मुनिभिः सुव्रता जिना जयाद्या पञ्चाशद्गणधरा यस्य स मुनिसुव्रत-जिनः । मुहुः श्रीसुपार्श्वः । श्रीर्लक्ष्मीः ईमहानन्दः । ते द्वे सुपार्श्वे यस्य स श्रीसुपार्श्वः । मुहुः शान्तिः । शां रमां अर्थवशात मोक्षलक्ष्मीं अमति बध्नाति इति शान्तिः । मुहुः पद्मप्रभः सुवर्णवर्णः । पुनः रः गंभीरध्वनिमान् । मत्वर्थीयोऽकारः । भूयः विमलविधुः । विमल-विधुरिव विमलविधुः । तत्कान्तित्वात् तदनन्तरं वा विमलनाथ-निभः । मुहुः वर्द्धमानः अनन्तचतुष्टयेन वर्द्धमान एधमानः । अपि निश्चितं । पुनः अजांकः । अजं शास्वतं अं ब्रह्म परमात्मज्ञानम् । कायति वदति अजांकः । मुहुः मल्लिः । मल्लते बिभर्ति निखिलजन-मनोहारिणीं सम्पदमिति मल्लिः । भूयः नेमिः । नानामी (नां, ई) मोहः तां मिनोति नेमिः । पुनः नमिः । न जनैर्मीयते परिच्छिद्यते नमिः । पुनः सुमतिः । सुमेषु शोभनलक्ष्मीमत्सु तिः पूजा यस्य स सुमतिः । पुनः सत् श्रेष्ठः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावनंतनाथस्तुतिः

चतुर्दशार्थश्च पूर्णः ।

आगे चौदहवे तीर्थंकर श्रीअनंतनाथकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—अथ श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः धर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः श्रीसुपार्श्वः पद्मप्रभः रः विमलविधुः वर्द्धमानः अपि अजांकः मल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सत् असौ अनन्तवाक् श्रीजगन्नाथधीरं मां अवतु ।

अर्थ—अथ शब्दका अर्थ अनन्तर है । अथवा अथ शब्द मंगलवाची है । जो भगवान् अनन्तनाथ स्वामी श्रेयान्श्रीवासुपूज्य हैं । श्रेय अ-र्हंत भगवान्को कहते हैं । और अन उत्तम क्षमादि दश प्रकारके धर्म को कहते हैं । श्रीका अर्थ सेवा करना है । जो भगवान् अरहंतदेवकी

और उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारके धर्मोंकी सेवा करें उनको श्रेयान्श्री कहते हैं। अर्हंतदेवकी और धर्मकी सेवा करनेवाले इन्द्रोंको श्रेयान्श्री-वासु कहते हैं। उनके द्वारा जो पूज्य हों उनको श्रेयान्श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान वृषभजिनपति हैं। उ का अर्थ समुद्र है। ऋ का अर्थ धर्म है। जिनका ऋ अर्थात् धर्म उ अर्थात् समुद्रके समान गंभीर हो उनको वृ कहते हैं। ष का अर्थ श्रेष्ठ है और भ का अर्थ नक्षत्र है। अतः श्रेष्ठ नक्षत्रोंको अर्थात ज्योतिषी देवोंको षभ कहते हैं। जो समुद्रके समान गंभीर धर्म को पालन करने वाले ज्योतिषी देव हों उनको वृषभ कहते हैं। जिन का अर्थ नारायण है। नारायण कहनेसे भगवान् अनंतनाथके समयमें होनेवाले पुरुषोत्तम नारायणको और उनके सम्बन्धसे बलभद्र, प्रतिनारायणको भी लेना चाहिए। जो वृषभ अर्थात् गंभीर धर्मको सेवन करनेवाले ज्योतिषी देवोंके और जिन अर्थात नारायण प्रतिनारायण दोनोंके स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान श्रीद्रुमांक हैं। श्रीका अर्थ कल्याण अथवा शोकको दूर करना है। जिनके समीपमें जीवोंका कल्याण करनेके लिए अथवा उनका शोक दूर करनेके लिए अशोकवृक्ष हों उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् धर्म हैं——अहिंसा आदि धर्मको पालन करनेवाले हैं। अथवा अहिंसा आदि धर्मका उपदेश देनेवाले हैं। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। सिंह आदि जीवोंको हरि कहते हैं। जिनके समीपमें सिंह हिरण आदि सब जीव इकट्ठे होकर बैठते हों उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। स्याद्वादके द्वारा पुष्ट होनेको पुष्पत कहते हैं और जीवादिक पदार्थोंको अन्त कहते हैं। जिनके मतमें जीवादिक पदार्थ अनेकांत वादसे पुष्ट हों उनको पुष्पदंत कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। जिनके गणधर अनेक मुनियोंसे घिरे हों उनको मुनिसुव्रत कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनके समीपमें समवसरणादिक लक्ष्मी और अनन्त सुख हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। यहांपर शासे मोक्षलक्ष्मी लेनी

चाहिये। शान्ति प्राप्त होनेको कहते हैं। जो शा अर्थात् मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हों उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। जिनके शरीर की प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् अनन्त नाथ की प्रभा भी सुवर्ण के समान है इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् र अर्थात् गंभीर हैं—जिनकी दिव्यध्वनि मेघ की गर्जनाके समान अत्यंत गंभीर है इसलिये उनको र कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलनाथके समान हों उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। जो अनन्त चतुष्टयसे सदा वर्द्धमान अर्थात् वृद्धिको प्राप्त होते रहें उनको वर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अपि अर्थात् निश्चयसे अजांक हैं। नित्यको अज कहते हैं। अं का अर्थ ब्रह्म वा परमात्मज्ञान है। और क धातु का अर्थ कहना वा निरूपण करना है। जो सदा रहनेवाले अं अर्थात् परमात्मज्ञानका क अर्थात् निरूपण करें उनको अजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्लि हैं। जो समस्त लोगोंके मनको हरण करनेवाली संपदाको धारण करें वे मल्लि कहाते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जो मनुष्योंके मोहको दूर करें उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। न का अर्थ नहीं है और मिका अर्थ जानना वा प्रमाणमें लाना है। जो साधारण मनुष्योंके ज्ञानमें न आसकें उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। सु श्रेष्ठको कहते हैं, मा लक्ष्मीको कहते हैं और ति पूजाको कहते हैं। जिनकी ति अर्थात् पूजा सुम अर्थात् श्रेष्ठ लक्ष्मीको धारण करनेवालोंसे हो उनको सुमति कहते हैं। फिर जो भगवान् सत् अर्थात् अत्यंत प्रशंसनीय हैं। ऐसे वे अनन्तनाथ स्वामी चौदहवें तीर्थंकर श्री जगन्नाथधीर अर्थात जैन धर्मके धुरंधर विद्वानोंकी रक्षा करें। जगत संसार वा तीनों लोकोंको कहते हैं। नाथ स्वामीको कहते हैं। यहांपर नाथ शब्दसे सब धर्मोंके स्वामी जैन धर्मको लेना चाहिए। जो तीनों लोकोंमें सब धर्मोंका सब मतोंका स्वामी हो ऐसे जैन मतको-जैन धर्मको श्रीजगन्नाथ कहते हैं और धीर शब्दका अर्थ पंडित है।

इति अनंतनाथस्तुति ॥

अथ धर्मनाथस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो,
हर्यकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—अथानन्तनाथस्तुत्यनन्तरम् । धर्मः धर्मनाथः पंचदशतीर्थनायकः । अथवा उः अहो हे धर्म हे धर्मनाथ हे जगन्नाथ हे जगत्पते । तु पुनः त्वं मां धीरं जगन्नाथनामानं पंडितम् । अव रक्ष । किंलक्षणः श्रेयान् । सर्वदेवेषु श्रेष्ठः । मुहुः श्रीवासुपूज्यः । श्रिया सम्पदा वा वरा असवः प्राणा येषां ते श्रीवासवः सुखिनः । श्रीवासुभिः पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । 'वो दन्तौष्ठ्यस्तथौष्ठ्योपि वरुणे वारणे वरे ।' मुहुः वृषभजिनपतिः । वृषेण भान्तीति वृषभाः ते च ते जिनाः अरिष्टसेनादयस्त्रिचत्वारिंशद्गणधरास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः । भूयः श्रीत् । श्रियं मोक्षलक्ष्मीमयति गच्छति श्रीत् । मुहुः रुमांकः । रु भयं अर्थात् संसारभयं तस्य मं मोघवृत्तिर्निष्फलवृत्तिरिति रुमम् । रुमं अंके जनानां यस्मादिति रुमांकः । 'मं मौली मोघवृत्तौ मं' । भूयः हर्यंकः हरिः पुरुषसिंह—नारायणः अर्थवशात् सुदर्शनबलभद्रमधुकीटाभिधः प्रतिनारायणस्तेंऽके यस्य स हर्यकः । अथवा हरी मघवत्सनत्कुमाराभिधौ चक्रिणौ अंके यस्य स हर्य्यंकः । पुनः पुष्पदन्तः । पुष्पन् पुष्टिं गच्छन् अन्तो जिनमततीर्थधर्मो यस्मादिति पुष्पदन्तः । तदुक्तं 'धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्' इति । 'अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्वव्यतीतिषु' । पुनः मुनिसुव्रतजिनः । मुना बन्धनेन अर्थवशात् ज्ञानावरणेन सहिता ना नरा अनुत्पन्नकेवलज्ञानास्तैः सुव्रताः परिव्रताः जिना गणधरा यस्य स मुनिसुव्रतजिनः । "दीर्घह्रस्वौ मुम् शब्दौ बन्धनार्थे त्रिलिङ्गिकौ" इति ।

अत्र इकारश्च्युतः । पुनः अनन्तवाक् अनन्तसदृश इत्यर्थः । अथवा अनन्तयोर्मघवत्सनत्कुमारयोश्चक्रिणोर्वाग् यस्य सोनन्तवाक् । पुनः श्रीसुपार्श्वः । श्रिया शोभनौ पार्श्वौ यस्य स श्रीसुपार्श्वः । पुनः शान्तिः । शः सूर्यः पूजनार्थमायातः अन्तौ अन्तिके यस्य स शान्तिः । " शः सूर्ये शोभने शीते " । मुहुः पद्मप्रभः सुवर्णवर्णः । पुनः अरः सद्भिरर्यते गम्यते इति अरः । मुहुः विमलविभुः । विगता मा मानं यस्या इति विमा सा ला लक्ष्मीर्येषां ते विमलास्तेषां इन्द्रादीनां विभुः विमलविभुः । पुनः असौवर्द्धमानः । सा लक्ष्मीः । न सा असा तस्याः उः पीडनं असौः अनन्तसुखं तेन वर्द्धमानः असौवर्द्धमानः । पुनः अप्यजांकोमल्लिः । नास्ति पि भयं संसारभयं यस्मादिति अपिः । अजो मोक्षो अंके यस्मादिति अजांकं रत्नत्रयं दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणं निश्चयव्यवहारभेदेन । अपि च तद् अजांकं अप्यजांकं संसारसंसरणविनाशकारि रत्नत्रयम् । तदेव उः समुद्रः इति अप्यजांकौः तं मल्लते बिभर्तीति अप्यजांकोमल्लिः । मुहुः नेमिः । ईः कुत्सार्थकः । इयः कुत्सार्थका बौद्धनैयायिकसांख्यशैववैशेषिकचार्वाकजैमिनीयागमाः नेषु नरेषु ईः कर्मपदभृताः मिनाति दूरीकरोति नेमिः । पुनः नमिः । नास्ति मिः परिमाणं अस्य नमिः । पुनः सत् शास्वतसुखमग्नः । पुनः सुमतिः । शोभने मे प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणे प्रमाणे एव तिर्महाधनं यस्य स सुमतिः ।

इति श्री चतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां मनीषिणा जगन्नाथेन विरचितायां श्रीधर्मनाथस्य पंचदशजिनस्य स्तुतिरगमत्पूर्णतां पंचदशार्थश्च पूर्णः ।

पंद्रहवें तीर्थंकर श्रीधर्मनाथकी स्तुति ।

अन्वयः — अथ श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः हर्यंकः पुष्पदन्तः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः असौवर्द्धमानः अप्यजांकोमल्लिः

नेमिः नमिः सत् सुमतिः उः जगन्नाथ धर्म तु मां धीरं अव।

अर्थः—अब श्रीअनन्तनाथकी स्तुति के बाद भगवान् श्रीधर्मनाथ की स्तुति करते हैं। जो भगवान् धर्मनाथ स्वामी श्रेयान् हैं सब देवोंमें श्रेष्ठ हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्री संपत्तिको कहते हैं। वाका अर्थ श्रेष्ठ है। और असुका अर्थ प्राण है। जिनके प्राण श्री अर्थात् संपत्तिसे व. अर्थात् श्रेष्ठ हैं ऐसे सुखी जीवोंको श्रीवासु कहते हैं। ऐसे सुखियोंके द्वारा जो पूज्य हों उन्हें श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान वृषभजिनपति हैं। धर्मसे सुशोभित होनेवाले गणधरोंको वृषभजिन कहते हैं। ऐसे गणधरोंके स्वामीको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीत् हैं। जो मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त हों उनको श्रीत् कहते हैं। फिर जो भगवान् रुमांक हैं। रु शब्दका अर्थ भय है। भय शब्दसे यहांपर संसारका भय लेना चाहिये। म शब्दका अर्थ मोघवृत्ति अथवा निष्फल होना है। इस प्रकार रुम शब्दका अर्थ संसारके भयका निष्फल होना है। जिनके समीपमें रहकर लोगोंका संसारसंबंधी भय निष्फल हो जाय उनको रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान हर्यंक हैं। जिनके समीपमें पुरुषसिंह नारायण सुदर्शन बलभद्र और मधुक्रीड प्रतिनारायण हों उनको हर्यंक कहते हैं। अथवा जिनके समयमें मघवा और सनत्कुमार नामके चक्रवर्ती हुए हों उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जिनसे जैनधर्म रूपी तीर्थ पुष्ट हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं। धर्मनाथके पूर्व अर्ध पल्यतक धर्मकी व्युच्छित्ति रही थी उसको दूर कर भगवान् धर्मनाथने फिरसे जैनधर्मकी प्रवृत्ति की इसलिये उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रतजिन हैं। मु शब्द का अर्थ बंध है और बंधशब्दसे ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंका बंध लेना चाहिये। न शब्द का अर्थ मनुष्य है। यद्यपि मुनिसुव्रत शब्दमें नि है तथापि यहांपर इकार का अर्थ नहीं लेते हैं। ऐसे शब्दको च्युत या छूटा हुआ कहते हैं। ज्ञानावरणादिकर्मोंके बंध सहितको मुनी कहते हैं। सुव्रत घिरे रहनेको

कहते हैं। जिनके जिन अर्थात् गणधरदेव छद्मस्थ ज्ञानियोंके साथ समवसरणमें विराजमान हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। जो भगवान् अनन्तनाथके समान हों उनको अनन्तवाक् कहते हैं। अथवा मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्तियोंको अनन्त कहते हैं। जिनकी वाणी इन दोनों चक्रवर्तियोंके लिये हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनके चारों ओरका भाग बहुत ही सुशोभित हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। श सूर्यको कहते हैं और अन्ति समीपको कहते हैं। जिनके समीपमें पूजा करनेके लिये आया हुआ सूर्य उपस्थित हो उनको शांति कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। सुवर्णको पद्म कहते हैं। भगवान् धर्मनाथके शरीरकी प्रभा सुवर्णके समान है इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। ऋ धातुका अर्थ जानना है। ऋ धातुसे अर बना है। जो सज्जनोंके द्वारा जाने जांय उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। वि का अर्थ रहित है। मका अर्थ मान है और ल का अर्थ लक्ष्मी है। जो मान रहित हो उसको विम कहते हैं। तथा मान रहित लक्ष्मीको विमला कहते हैं। जिनके ऐसी लक्ष्मी हो उन इन्द्रादिकोंको विमल कहते हैं। इन्द्रादिकोंके स्वामीको विमलविभु कहते हैं। जो भगवान् असौवर्द्धमान हैं। सा लक्ष्मीको कहते हैं। लक्ष्मीके अभावको दुःख वा दरिद्रताको असा कहते हैं। उ का अर्थ पीडा देना, नाश करना है। दुःख वा दरिद्रताके सर्वथा नाश होनेको अर्थात् अनन्त सुखके प्राप्त होनेको असौ कहते हैं। अनन्त सुखसे जो बर्द्धमान अर्थात् सदा बढते रहें उनको प्रभु असौवर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अप्यजांकोमल्लि हैं। जिससे संसार का भय न हो उसको अपि कहते हैं। जिसके समीप रहनेसे अज अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाय उसको अजांक कहते हैं। रत्नत्रयसे मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिये रत्नत्रयको अजांक कहते हैं। तथा यह अजांक अपि

अर्थात् संसारके भयका नाश करनेवाला है इसलिये इसको अप्यजांक कहते हैं। इस प्रकार संसारके परिभ्रमणको नाश करनेवाले रत्नत्रयको अप्यजांक कहते हैं। उ शब्दका अर्थ समुद्र है। जो रत्नत्रय समुद्रके समान गंभीर हो उसको अप्यजांको कहते हैं। जो ऐसे रत्नत्रयको धारण करें उनको अप्यजांकोमल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। न शब्दका अर्थ मनुष्य है। ई शब्दका अर्थ कुत्सित वा मिथ्या है। बौद्ध नैयायिक सांख्य शैव वैशेषिक चार्वाक जैमिनीय आदि मिथ्या शास्त्रोंको ई कहते हैं। तथा मि का अर्थ दूर करना है। जो मनुष्योंके मिथ्याशास्त्रोंको दूर करें उनको नेमि कहते हैं। भगवान् धर्मनाथके धर्मोपदेशसे भी अनेक भव्य जीवोंका मिथ्यात्व दूर हुआ है इसलिये उनको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। मि का अर्थ परिमाण है। जिनका कोई परिमाण न हो उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सत् हैं, सदा रहनेवाले अनन्त सुखमें निमग्न हैं। फिर जो भगवान् सुमति हैं। ति का अर्थ धन है। श्रेष्ठ प्रमाण ही जिनका महाधन हो उनको सुमति कहते हैं। ऐसे वे जगन्नाथ अर्थात् तीनों लोकों के स्वामी भगवान् धर्मनाथ पंद्रहवें तीर्थंकर मुझ धीर अर्थात् पंडित की—जगन्नाथनामके विद्वानकी रक्षा करो।

इति धर्मनाथस्तुति ॥

—०—

अथ श्री शांतिनाथस्तुतिः।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभाजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥

टीकाः— असौ लोकोत्तरः शान्तिः श्रीशान्तिनाथः षोडशतीर्थराजः श्रीजगन्नाथधीरमपि जगन्नाथनामानं पण्डितमपि किं न

न अवृतादपि तु अवतादित्यर्थः । द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः। अपिशब्दस्यायमर्थः । अन्ये भव्या यथा कष्टाद् रक्षितास्तथा श्रीजगन्नाथधीरमपि । किंविशेषणगोचरः ? श्रेयान् । कर्माणि प्रत्यहं शृणन्ति हिंसन्ति शा शरौ शरः । सम्यग्लोचनाः । तेषां रा गोचरा शा यथार्थाः "यो यथार्थे स्त्रियां तु या" "रो गोचरार्थकः।" अतः उत्तमक्षमादयो यस्य स श्रेयान्। पुनः श्रीवासुपूज्यः। श्रीर्नानाराष्ट्रोद्भवलक्ष्मीस्तस्या ईर्मोहो येषां ते श्रियः। षट्खण्डदेशोद्भवलक्ष्मीमोहलोलुपास्तेषां वं वासं वसति अस्यति क्षिपतीति श्रीवास् चक्ररत्नम् । श्रीवासा उः वितर्कः श्रीवासुः । जेष्यामि हनिष्यामि वेति स्वाज्ञाडम्बरः । श्रीवासुना चक्रबलेन पूः पवित्रा निष्कंटका ज्या पृथिवी यस्य स श्रीवासुपूज्यः । तदुक्तं स्वामिसमन्तभद्रैः "चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्" इति। अन्यच्च पूज्यपादैरुक्तम् "पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च" इति। "पूः पृथिव्यां पवित्रवत् स्यात्" । पुनः अवृषभजिनपतिः । न वृषाः श्रेष्ठा भा भोगयोषितो येषां ते अवृषभाः । "भा भास्करे भास्वरेपि स्याद्भायां भोगयोषिति"। अवृषभाश्च ते जिनाश्च अवृषभजिनाः। कृत्स्नस्त्रीपरित्यागा गृहीतमहाव्रता गणधराश्चक्रायुधादयः षट्त्रिंशत् । अवृषभजिनानां पतिः अवृषभजिनपतिः । अथवा वृषभजिनपतिः । वृषभः कामदेवः तत्पदप्राप्तेः । वृषभश्चासौ जिनपतिः। मुहुः श्रीद्रुमांकः श्रिया नानाशोभया युता द्रुमा वृक्षा यस्मिन् स श्रीद्रुमः । अर्थवशात् वृषभाचलपर्वतः तत्र अंकः स्वनामचिन्हं यस्य स श्रीद्रुमांकः । पुनः अथधर्मः न थं स्तोकं धर्म यस्य सोथधर्मः। त्रिपदवीलब्धेः। पुनः हर्यंकः । हरयः अश्वा अष्टादशकोटिमिता अंके यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदन्तः । पुष्पन् पुष्टः अन्तः सत्वं बलं यस्य स पुष्पदन्तः । अनन्तबलविराजमानः । भूयः अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः । अनन्ता नाशरहिता वाचो नामानि येषां ते अनन्त-

वाचः शास्वताः पञ्च म्लेच्छाः । तेषां श्रियः कन्याहस्तिसुवर्ण-वस्त्रादयः सुपार्श्वे यस्य सोऽनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः । पुनः पद्मप्रभः हाटककान्तिः । अथवा पद्मैः पद्मादिभिर्नवनिधिभिः प्रभाति शोभते इति पद्मप्रभः । उक्तं च " पद्मः कालो महाकालः सर्वरत्नश्च पाण्डुकः । नैःसर्पो माणवः शंखः पिंगलो निधयो नव । एते चक्रिणां भवन्ति । पुनः अरः । धर्मरथचक्रे अर इव अरः । " यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् " इति मुहुः विमलविभुः विशिष्टाश्च ते मा मन्दिराणीति विमाः । " मो मन्त्रे मन्दिरे माने " । विमानां विमेषु वा ला लक्ष्मीर्येषां ते विमलाः षट्खण्डमध्यस्थमहाराष्ट्रपतयो राजानस्तेषां विभुः विमलविभुः । पुनः अमुनिसुव्रतजिनः । न मुनिभिः सुव्रतो जिनो यस्मादित्यमुनिसुव्रतजिनः । पुनः वर्द्धमानः । सुखेन वर्द्धमानः । पुनः अजांकः । न जो जेता सिंहस्येति अजः अर्थवशान्मृगः । अजः अंके यस्य सोजांकः । " शान्ति स वः शान्तिजिनः करोतु विभ्राजमानो मृगलाञ्छनेन " । पुनः मल्लिः कर्मारिजये महामल्लः । पुनः ईमिः दिदृक्षमाणानां वृकादीनामियं पापं मिनुते प्रक्षेप्स्यति ईमिः । " ईः कुत्सार्थेपि पापेपि निषेधे नयनभ्रमे " । मुहुः मिः । केवलज्ञानेन जगन्निमीत इति मिः । भूयः मांशुमतिः । मांशवः प्रमाणकिरणा मा मन्त्राः संवौषट्आव्हाननादयो यस्यां सा मांशुमा । मांशुमा तिः पूजा यस्य स मांशुमतिः । पुनः सत् शास्वतः । एतेन मोक्षस्थः श्रीशान्तिनाथो नामादिभिरस्माकं पूज्य इति ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्ति-छात्रबुधजगन्नाथेन विरचितायां षोडशजिनश्रीशान्तिनाथ-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

आगे सोलहवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ की स्तुति करते हैं।

अन्वयः—श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः अवृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः अमुनिसुव्रतजिनः अजांकः शान्तिः मल्लिः ईमिः मिः मांशुमतिः सत् वर्द्धमानः असौ शान्तिः श्रीजगन्नाथधीरं अपि किं न अवतु इति न किंतु अवतु एव ॥

अर्थ—जो भगवान् श्री शान्तिनाथ स्वामी श्रेयान् हैं। शृ धातुका अर्थ हिंसा करना है। जो कर्मोंका नाश करें ऐसे सम्यग्दृष्टियोंको शृ कहते हैं। एशब्दका अर्थ धारण करना है। य शब्दका अर्थ यथार्थ है। जिनके निरूपण किये हुए अन अर्थात् उत्तम क्षमा आदि धर्म सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा यथार्थ रीतिसे धारण किये जाते हों उनको श्रेयान् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। जो छहों खंडों के सब देशोंमें उत्पन्न होनेवाली लक्ष्मी में ई अर्थात् मोहित हो रहे हैं ऐसे राजाओंको श्री कहते हैं। व का अर्थ निवास स्थान है और अस् धातुका अर्थ दूर करना है। श्री अर्थात् जो समस्त देशोंकी राज्यलक्ष्मीमें मोहित होनेवाले राजा महाराजाओंके व अर्थात् निवास स्थानको अस् अर्थात् छुडा देवे ऐसे चक्ररत्नको श्रीवास् कहते हैं। उ का अर्थ तर्क वितर्क करना है। जो श्रीवास् अर्थात् चक्र रत्नके द्वारा "इसको जीतूं इसको मारूं" इस प्रकार उ अर्थात तर्क वितर्क उठनेको श्रीवासु कहते हैं। पू का अर्थ पवित्र है और ज्याका अर्थ पृथ्वी है। जिनके लिए यह समस्त पृथ्वी श्रीवासु अर्थात् चक्ररत्नके बलसे पू अर्थात् पवित्र हो—निष्कंटक हो उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान् अवृषभजिनपति हैं। भोगोपभोगके योग्य स्त्रियोंको भ कहते हैं। जिनके वृष अर्थात् श्रेष्ठ भ अर्थात् भोगस्त्रियां अ अर्थात न हों उनको अवृषभ कहते हैं। जिन्होंने समस्त स्त्रियोंका त्याग कर महाव्रत धारण करलिया हो ऐसे गणधरोंको अवृषभजिन कहते हैं और उनके स्वामीको अवृषभजिनपति कहते हैं। अथवा वे भगवान् वृषभजिनपति हैं।

भगवान् शांतिनाथको कामदेवका पद भी प्राप्त है और वे तीर्थंकर भी हैं इसलिए उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांक हैं। जहांपर अनेक प्रकारकी शोभासे सुशोभित बहुतसे वृक्ष हों उसको श्रीद्रुम कहते हैं। वृषभाचल पर्वत भी ऐसे ही अनेक सुशोभित वृक्षोंसे शोभायमान है इसलिए प्रकरणके वशसे वृषभाचल पर्वतको ही श्रीद्रुम कहते हैं। जिन्होंने वृषभाचल पर्वतपर अपने नामका चिन्ह किया हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् शांतिनाथ चक्रवर्ती थे और उन्होंने दिग्विजय करनेके अनन्तर अपना नाम वृषभाचल पर्वतपर लिखा था इसलिए उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् अथधर्म हैं। जिनका धर्म वा पुण्य थोडा न हो, सबसे अधिक हो उनको अथधर्म कहते हैं। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। जिनके समीप घोडे हों उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान शांतिनाथके समीप अठारह करोड घोडे थे। इस लिये उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान पुष्पदन्त हैं। जिनमें पुष्पत् अर्थात् अनन्त अन्त अर्थात् बल हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व हैं। जिनका नाम कभी नष्ट न हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। पांचो म्लेच्छखंड सदा एकसे बने रहते हैं। उनमें कुछ परिवर्तन नहीं होता। इसलिये उनको अनन्तवाक् कहते हैं। श्री का अर्थ लक्ष्मी है। पांचों म्लेच्छखंडोंमें उत्पन्न होनेवाली कन्या हाथी सुवर्ण वस्त्र आदि लक्ष्मी को अनन्तवाक्श्री कहते हैं। वह जिनके सुपार्श्व अर्थात् समीपमें हो उनको अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। चक्रवर्ती होनेके कारण भगवान् शांतिनाथके समीप भी पांचों म्लेच्छखंडोंकी लक्ष्मी थी इसलिये उनको अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। अथवा जो पद्म काल आदि नौ निधियोंके द्वारा प्रभाति अर्थात् अच्छी तरह शोभायमान हों उनको पद्मप्रभ कहते हैं। चक्रवर्ती होनेके कारण भगवान् शांतिनाथके ये नौ निधियां थी

इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। धर्मरूपी रथके पहियेके लिये जो आरेके समान हों उनको अर कहते हैं। तीर्थ-करोंके विहार करते समय धर्मचक्र सबसे आगे चलता है। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं वि का अर्थ विशिष्ट वा शोभायमान है। या का अर्थ मन्दिर है, ल का अर्थ लक्ष्मी है। वि अर्थात् विशिष्ट वा अधिक सुशोभित म अर्थात् मन्दिरोंमें जिनकी ल अर्थात् लक्ष्मी हो उनको विमल कहते हैं। भारतवर्षके छहों खंडोंमें होनेवाले बडे बडे राज्यों के अधिपति राजा महाराजाओंकी लक्ष्मी श्रेष्ठ मन्दिरोंमें रहती है इसलिये ऐसे राजा महाराजाओं को विमल कहते हैं। तथा उनके स्वामीको विमलविभु कहते हैं। भगवान् शान्तिनाथ भी छ्यानवे हजार राजाओंके स्वामी थे इसलिये उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् अमुनिसुव्रतजिन हैं। जिनके सम्बन्धसे गणधरदेव केवल मुनियोंसे ही न घिरे रहें, मुनियोंके ही साथ न रहें किन्तु देव विद्याधर श्रावक श्राविका सबके साथ रहें उनको अमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अजांक हैं। अ का अर्थ नहीं है और ज का अर्थ जीतना है। जो सिंहको न जीत सके उसको अज कहते हैं। हिरण भी सिंहको नहीं जीत सकता इसलिये प्रकरणके वशसे हिरणको अज कहते हैं। जिनके हिरणका चिन्ह हो उनको अजांक कहते हैं। भगवान् शांतिनाथके चरणोंमें हिरणका चिन्ह है इसलिये उनको अजांक कहते हैं। लिखा भी है " शान्ति स वः शान्तिजिनः करोतु विभ्राजमानो मृगलांछनेन " अर्थात् हिरणके चिन्हसे सुशोभित होनेवाले भगवान् शांतिनाथ तीर्थंकर तुम लोगोंको शांतिप्रदान करें। " फिर जो भगवान् मल्लि हैं। जो कर्मरूपी शत्रुओं-को जीतनेके लिये मल्ल हों उनको मल्लि कहते हैं। फिर जो भगवान् ईमि हैं। ई शब्दका अर्थ पाप है। मि का अर्थ दूर करना वा नाश करना है। जो अपनी दृष्टि मात्रसे ही जूं आदि छोटे छोटे जीवों तक के ई अर्थात पापोंको मि अर्थात दूर कर देवें उनको ईमि कहते हैं।

फिर जो भगवान् मि हैं। मि का अर्थ मान करना वा जानना है। जो अपने केवलज्ञानसे समस्त लोक अलोकको जानें, सब प्रमाण करलें उनको मि कहते हैं। भगवान शांतिनाथ भी सर्वज्ञ हैं। समस्त लोक अलोकको प्रत्यक्ष जानते हैं, इसलिये उनको मि कहते हैं। फिर जो भगवान् मांशुमति हैं। मा अर्थात प्रमाणकी किरणोंको मांशु कहते हैं। तथा म का अर्थ मंत्र है और ति का अर्थ पूजा है। जिनकी ति अर्थात पूजामें म अर्थात् संवौषट् आह्वानन आदि मंत्र मांशु अर्थात् प्रमाणकी किरणोंके समान हों उनको मांशुमति कहते हैं। फिर जो भगवान सत् अर्थात् सदा रहनेवाले नित्य हैं। फिर जो भगवान् वर्द्धमान हैं। जो सदा वृद्धिको प्राप्त होते रहें उनको वर्द्धमान कहते हैं। ऐसे ये लोकोत्तर श्रीशांतिनाथ भगवान सोलहवें तीर्थंकर क्या मुझ जगन्नाथपंडितकी भी रक्षा नहीं करेंगे? नहीं नहीं, अवश्य करेंगे।

इति श्रीशांतिनाथस्तुति ॥

अथ श्रीकुंथुनाथस्तुतिः।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभो रो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

टीका—अथ श्रीशांतिनाथस्तुत्यनन्तरं। उ अहो। आद्गुणः, एङः पदान्तादति। हे श्रेय हे आश्रयणीय! हे अन् उत्तमक्षमादि-दशविधधर्मेण समस्तजीवाननिति प्राणिति अन्। तत्सम्बुद्धौ हे अन्। तदुक्तम् "कुंथुप्रभृत्यखिलसत्वदयैकतानः कुंथुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै"। भो श्रीवासुपूज्य! श्रियाः मनोहर-कन्याहस्तितुरंगमवस्त्राभूषणादिलक्षणाया वासो यस्यां सा श्री-वासा। श्रीवासा पूः पवित्रा षट्खण्डाज्ञा ज्या पृथिवी यस्य स

श्रीवासुपूज्यः तत्सम्बुद्धौ हे श्रीवासुपूज्य ! अत्र केचिदिज्याशब्दमाहुस्तदमत् " क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिरित्यमरः " अन्यत्रापि ज्या मौर्वी ज्या वसुंधरेति । पूः पवित्रे पुवौ पुवः । अत्रोकारश्च्युतः । उः अहो हे वृष कामदेव " वृषो बलं वृषः कामः " इति । हे श्रीद्रुमांक ! श्रीद्रुमे वृषभाचलेंको यस्य स श्रीद्रुमांकस्तत्सम्बुद्धौ हे श्रीद्रुमांक ! उ वितर्के । हे पुष्पदन्त ! पुष्पन्ति कार्याणि इति पुष्पत् अर्थवशात्नवनिधिचतुर्दशरत्नानि चक्रादीनि । तैरंतति बध्नाति म्लेच्छादीनिति पुष्पदन्तः । तत्सम्बुद्धौ हे पुष्पदन्त ! हे उमुनिसुव्रतजिन ! उना निजनिजभवसम्बन्धप्रश्नेन युता मुनयः ऋषयः इति उमुनयः । तैः सुवृताः परिवृता जिनाः पञ्चत्रिंशद्गणभृतो यस्य स उमुनिसुव्रतजिनः तत्सम्बुद्धौ हे उमुनिसुव्रतजिन ! हे पद्मप्रभ ! हिरण्यकान्ते ! अथवा नवनिधीश ! हे उरोविमलविभुर ! उरसा हृदयेन विमला निर्मला विभव इन्द्रादयो मनुष्या वा तेषु रः पञ्चनमस्कारलक्षणः शब्दो यस्य स उरोविमलविभुरस्तत्सम्बुद्धौ भो उरोविमलविभुर ! एतेन " ओं भूः ओं भुवः ओ स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात " इत्यादि गायत्रीमन्त्राणामुपाधिलक्षणानां निराकृतिर्विहिता । हे सौव ! स्वमात्मानं वेद इति सौवस्तत्सम्बुद्धौ हे सौव हे आत्मज्ञ ! हे श्रीजगन्नाथ ! त्रिजगदीश्वर ! हे अजांक ! अजश्छागोंके यस्य सोजांकस्तस्य सम्बुद्धौ हे अजांक ! एवं विशेषणविशिष्टश्रीकुंथुनाथसप्तदशजिनेशिन् ! तव सन् सर्वेषु उत्तमतरो धर्मो मां जगन्नाथनामानं धीरं पण्डितं अवतात् । किंविशिष्टे ऊनमपि नृमात्रमपि । किंलक्षणो धर्मः भजिनपतिः भानि नक्षत्राणि जिना नारायणाः जना लोका वा इकारश्च्युतः । भानि च जनाश्च भजनाः तान् पातीति भजनपा सा तिः पूजा यस्य धर्मस्य स भजिनपतिः । भूयः हर्यंकः हरीणां इन्द्रचन्द्रार्कविष्णुचक्रधरादीनामंकः पदवी य-

स्माद्धर्मादिति हर्यंकः। ननु च हर्यादीनां पदवी तेषामेव। अन्ये ये धर्मं कुर्वन्ति तेषां किं स्यात्तदर्थमुच्यते। मुहुः अकृश्रीसुपार्श्वः अकति कुटिलं गच्छति अक् कुटिला अस्थिरा सा चासौ श्रीर्धनादिसम्पत्तिः इति अकृश्रीः। अकः सवर्णे दीर्घः। एतेन स्थिरलक्ष्मीरित्युक्तम्। सा सुपार्श्वे यस्माद्धर्माज्जनानामिति अकृश्रीसुपार्श्वः। पुनः शान्तिः पापं शान्तयति शान्तिः। पापनाशकः। "धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते" इत्यादि ज्ञेयम्। पुनः ऋद्धमानः ऋद्धज्ञातजिनागमपरमार्थैर्मान्यत इति ऋद्धमानः। पुनः उमल्लिः उः शंकरो देवविशेषो येषां ते उमन्तः। मिथ्यामतगाः। शिवभक्ता लिङ्गिनः। तेषां लिर्नाशो यस्माद्धर्मादिति उमल्लिः। शिवेत्युपलक्षणं हरिहरहिरण्यगर्भबुद्धादयोपि हीष्यन्ते। पुनः नेमिः। ने नरे महापुरुषे मिर्मानं दशधा पूर्णत्वं यस्य स नेमिः। देवानामव्रतत्वात् मनुष्याणां महाभाग्यत्वात। अत्र सप्तम्या अलुक्। भूयः नमिः। नास्ति मिर्हिंसा यस्मादिति नमिः। अहिंसालक्षणो धर्म इत्युक्तम्। भूयः सुमतिः शोभना श्रीजिनोक्तसप्ततत्त्वनवपदार्थषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायादिलक्षणा त्यक्तमिथ्यामार्गा गृहीतसम्यक्त्वा मतिर्यस्मादिति सुमतिः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्तिशिष्य सुधीजगन्नाथविरचितायां सप्तदशजिनस्य श्रीकुंथुनाथस्य स्तुतिः पूर्णा ॥

अब आगे सत्रहवें तीर्थंकर श्रीकुंथुनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—अथ उ श्रेय। हे अन्। भो श्रीवासुपूज्य। उ वृष। हे श्रीद्रुपांक। उ पुष्पदन्त। हे उमुनिसुव्रतजिन। हे पद्मप्रभ! हे उरोविमलविधुर। हे सौव। हे श्रीजगन्नाथ। हे अजांक। तव भजिनपतिः हर्यंकः अकृश्रीसुपार्श्वः शांतिः ऋद्धमानः उमल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः सन् धर्मः ऊनं धीरं मां अवतु।

अर्थ—अथानंतर भगवान् कुंथुनाथकी स्तुति करते हैं। सबसे प-हिले उनके बारह विशेषण संबोधनरूपमें लिखते हैं । श्रीद्रुमांकोथधर्मः इसके पदच्छेद श्रीद्रुमांक उ अथ धर्मः इस प्रकार करते हैं । पहले अ × उ मिलाकर ओ कर लेते हैं। और फिर व्याकरणके नियमानुसार अथके अकारका लोप कर देते हैं। इसी प्रकार और भी पदच्छेद अ-न्वयके अनुसार समझ लेना चाहिये। उ का अर्थ हे अहो आदि संबोधन है। उ श्रेय ! जो सबके आश्रय लेने योग्य हों उनको श्रेय कहते हैं। हे अन् ! जो उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्मोंसे सब जीवोंकी रक्षा करें उनको अन् कहते हैं। अन धातुका अर्थ रक्षा कर-ना है । लिखा भी है 'कुंथुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः कुंथुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै ' अर्थात् " भगवान् कुंथुनाथ स्वामी द्वीन्द्रिय आदि सब जीवों की रक्षा करनेमें ही लगे हुए हैं। इसलिये वे भगवान् रोग बुढापा जन्म मरण आदि सब दोषोंको दूर करें। " तथा भो श्रीवासुपूज्य ! कन्या हाथी घोडे वस्त्र आभूषण आदि मनोहर लक्ष्मीको श्री कहते हैं। निवासस्थानको वास कहते हैं। जिस आज्ञा अथवा पृथिवीमें कन्या हाथी घोडे आदि की मनोहर लक्ष्मीका निवास हो उसको श्रीवास कहते हैं। पू का अर्थ पवित्र है तथा छहों खंडों में होने वाली अखंड आज्ञा है और ज्याका अर्थ पृथ्वी है। जिनकी पू अर्थात् छहों खंडों में होनेवाली अखंड आज्ञा और ज्या अर्थात् समस्त पृथ्वी श्रीवास अर्थात् कन्या हाथी घोडे आदि मनोहर लक्ष्मीके निवासस्थानसे सुशोभित हो उनको श्रीवासु-पूज्य कहते हैं। भगवान् कुंथुनाथ चक्रवर्ती थे इसलिये उनकी आज्ञा छहो खंडोमें अखंड थी और समस्त पृथ्वी ऐसी ही लक्ष्मीसे सुशोभित थी इसलिये उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। यहांपर उकार च्युत शब्द है। अर्थात् श्रीवासु का उकार छोडकर अर्थ किया गया है। तदनंतर हे वृष ! वृष कामदेवको कहते हैं। भगवान् कुंथुनाथको कामदेवका पद प्राप्त था। फिर हे श्रीद्रुमांक ! जिसपर वृक्षोंकी शोभा हो उसको

श्रीद्रुम कहते हैं। वृषभाचल पर्वत भी ऐसा है इसलिये प्रकरणवश उसीको यहांपर श्रीद्रुम कहा है । जिनके नामका चिन्ह वृषभाचल पर्वतपर हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। चक्रवर्ती होनेके कारण भगवान् कुंथुनाथने दिग्विजय करनेके अनन्तर अपना नाम वृषभाचल पर्वतपर लिखा था। फिर हे पुष्पदन्त ! जो कार्योंको पूर्ण करें उनको पुष्पत् कहते हैं। प्रकरणवश पुष्पत् शब्दका अर्थ यहांपर नौ निधि, चौदह रत्न तथा चक्र आदि चक्रवर्तीकी विभूति लेनी चाहिये। अन्त् धातुका अर्थ बांधना वा वश करना है। जो चक्र निधि रत्न आदिके द्वारा म्लेच्छ आदि राजाओंको वश करें उनको पुष्पदन्त कहते हैं। भगवान् कुंथनाथने भी सबको वशमें किया था इसलिये उनको पुष्पदन्त कहते हैं। अनन्तर हे उमुनिसुव्रतजिन ! उ शब्दका अर्थ वितर्क वा प्रश्न है। इससे यहांपर अपने अपने भव संबंधी प्रश्न लेना चाहिये। जो मुनि अपने अपने भव पूछनेके लिये आये हों उनको उमुनि कहते हैं। जिनके गणधर अपने भव पूछनेके लिये आये हुए मुनियोंसे घिरे हों—उनके साथ विराजमान हों उनको उमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान् कुंथुनाथके समवसरणमें भी पैंतीस गणधर अनेक ऐसे मुनियोंके साथ विराजमान थे इसलिये उनको उमुनिसुव्रतजिन कहते हैं । फिर हे पद्मप्रभ ! जिनके शरीरकी प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। अथवा भगवान् कुंथुनाथ पद्म आदि नौ निधियोंके स्वामी हैं इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। अनन्तर हे उरोविमलविभुर ! उर हृदयको कहते हैं, विमल निर्मलको कहते हैं और विभु इन्द्रादिक महापुरुषोंको कहते हैं । जो हृदयसे निर्मल हों ऐसे इन्द्रादिकोंको अथवा महापुरुषोंको उरोविमलविभु कहते हैं। र का अर्थ पंच नमस्कार मंत्र है। जिनका कहा हुआ पंचनमस्कार मंत्र इंद्रादिक महापुरुषोंके लिये हो उनको उरोविमलविभुर कहते हैं । फिर हे सौव ! सौ शब्दका अर्थ आत्मा है और व शब्दका अर्थ जानना है। जो आत्माको जानें उनको सौव कहते हैं।

भगवान् कुंथुनाथ भी अपने केवलज्ञानके द्वारा आत्माको जानते हैं इसलिये उनको सौव कहते हैं। फिर हे श्रीजगन्नाथ! हे तीनों लोकों के स्वामी! हे अजांक! जिनके बकरेका चिन्ह हो उनको अजांक कहते हैं। भगवान् कुंथुनाथके चरणों में बकरेका चिन्ह हैं इस लिये उनको अजांक कहते हैं। इतने विशेषणोंसे सुशोभित होनेवाले हे कुंथुनाथ भगवन्! सत्रहवें तीर्थंकर! आपका सत् अर्थात् सबसे उत्तम धर्म अहिंसा रूप धर्म ऊन अर्थात् केवल मनुष्य मात्र पर्यायको धारण करने वाले मुझ जगन्नाथकी अर्थात् इस ग्रंथके बनानेवाले विद्वद्वर पंडित जगन्नाथ की रक्षा करे। आपका कहा हुआ वह सर्वोत्तम धर्म कैसा है? भजिनपति है। भ शब्दका अर्थ नक्षत्र वा ज्योतिषी देव है। जिनका अर्थ नारायण है। अथवा इकार च्युत मानकर–इकारको छोडकर जन शब्द लेना चाहिये। क्योंकि श्लेषमें अनुस्वार विसर्ग और मात्राओंके च्युत होनेमें कोई दोष नहीं होता। जनका अर्थ मनुष्य है। और पका अर्थ रक्षा करना है। जो ज्योतिषी देवों को नारायणों को अथवा साधारण (सर्व) मनुष्यों को रक्षा करे उसको भजिनप कहते हैं। ति शब्दका अर्थ पूजा करना है। जिस धर्मकी पूजा देव और मनुष्योंकी रक्षा करने वाली हो उसको भजिनपति कहते हैं। आपके कहे हुए धर्म की पूजा करनेसे सबकी रक्षा होती है इसलिये आपका धर्म भजिनपति कहा जाता है। फिर जो धर्म हर्यंक है। हरि शब्दका अर्थ इन्द्र सूर्य चन्द्रमा नारायण चक्रवर्ती आदि है। जिस धर्मके प्रसादसे इन्द्र चक्रवर्ती सूर्य चन्द्रमा नारायण आदि पद प्राप्त हों उसको हर्यंक कहते हैं। कदाचित् यहांपर कोई यह प्रश्न करे कि इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी पदवी तो नियत जीवोंको मिलती हैं। यदि उनके सिवाय अन्य-मनुष्य धर्म धारण करें तो उनको क्या फल मिलता है? उसकेलिये कहते हैं। वह धर्म अक्श्रीसुगर्ध्व है। अक् शब्दका अर्थ कुटिल वा चंचल है। श्रीका अर्थ धन संपत्ति आदि लक्ष्मी है। जो लक्ष्मी चंचल और अ-

स्थिर हो उसको अकृश्री कहते हैं। ई शब्दका अर्थ निषेध करना है। जो लक्ष्मी चंचल न हो सदा रहनेवाली स्थिर हो उसको अकृश्री ई अथवा अकृश्री कहते हैं। ऐसी अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी जिसके प्रसादसे सुपार्श्व अर्थात् समीपमें आजाय उसको अकृश्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो धर्म शान्ति है। जो पापोंका नाश करदेवे उसको शांति कहते हैं। फिर वह धर्म ऋद्धमान है। ऋद्ध शब्दका जैनशास्त्रों में कहा हुआ परमार्थका स्वरूप है। और मान शब्दका अर्थ जानना है। जो शास्त्रोंमें कहे हुए परमार्थसे जाना जाय उसको ऋद्धमान कहते हैं। भगवान्‌का कहा हुआ धर्म भी ऐसा है इसलिये उसको ऋद्धमान कहते हैं। फिर वह धर्म उमलि है। उ शब्दका अर्थ महादेव है। जो महादेवको ही देव माननेवाले हैं ऐसे मिथ्यादृष्टी शिवभक्त उमत् कहलाते हैं। लि शब्दका अर्थ नाश है। जिस धर्मके प्रसादसे ऐसे मिथ्या धर्मका नाश हो उस धर्मको उमलि कहते हैं। यहां पर लिंगायत या शिवभक्त उपलक्षण है। इससे हरि हर ब्रह्मा बुद्ध आदि सबका मत लेना चाहिये। फिर जो धर्म नेमि है। न शब्दका अर्थ पुरुष वा महापुरुष है। उसकी सप्तमीका ने बनता है। और यहां पर अलुक् समास है। अर्थात इस अलुक् समासमें भी विभक्तिका लोप नहीं होता। तथा मि परिमाणको कहते हैं। जो दश प्रकारका धर्म महापुरुषोंमें ही पूर्ण हो उसको नेमि कहते हैं। भगवान्‌का कहा हुआ उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारका धर्म इन्द्रादिक देवोंमें पूर्ण नहीं होता क्योंकि वे व्रती नहीं होते। वह धर्म गणधरादि महापुरुषों में ही पूर्ण होता है क्योंकि मोक्षमार्गमें प्राप्त हो जानेके कारण वे ही पुरुष महाभाग्यशाली गिने जाते हैं। अतएव उस धर्मको नेमि कहते हैं। फिर जो धर्म नमि है। जिसके प्रसादसे हिंसा न हो उसको नमि कहते हैं। भगवान् का कहा हुआ धर्म भी अहिंसास्वरूप है। अतएव उस धर्मसे उसके पालन करनेसे कभी कहीं हिंसा नहीं हो सकती इसलिये उस धर्मको नमि कहते हैं। फिर

वह धर्म सुमति है। जिससे श्रेष्ठ बुद्धि हो उसको सुमति कहते हैं। भगवान् कुंथुनाथके कहे हुए धर्मके प्रसादसे भी भव्य जीवोंकी बुद्धि सात तत्व नौ पदार्थ छह द्रव्य और पंचास्तिकाय आदि पदार्थोंकी जानकार हो जाती है—मिथ्या मार्गको छोडदेती है और सम्यग्दर्शनको ग्रहण करलेती है इसलिये उस धर्मको सुमति कहते हैं। हे भगवन् कुंथुनाथ! आपका कहा हुआ ऐसा धर्म मेरी रक्षा करो।

इति कुंथुनाथजिन स्तुत॥

अथ श्री अरनाथस्तुतिः।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो,
हर्यकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोगेविमलविभुरसौवर्द्धमानोप्यजांको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मा सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्॥

टीकाः— उ अहो भो वृषभजिन! वृषेण भातीति वृषभः। वृषभश्चासो जिनश्च कामदेवो वृषभजिनः तत्सम्बुद्धौ भो वृषभजिन! कामदेवपदवीलब्धेः। भो मुनिसुव्रतजिन! मुनिभिः सुव्रता जिनाखिलसद्गुणधराः कुम्भार्याद्या यस्य स मनिसुव्रतजिनः तत्सम्बुद्धौ भो मुनिसुव्रतजिन! अथवा भो मुनिसुव्रत दिगम्बरसेवित! भो जिन! कामदेव! हे विभ! अपरिमेय! हे सन्! जगमरणरहित! हे अजांक! अजाः सुभौमनंदिषेणबलदेवपुंडरीकार्द्धचक्रिणः सुभौमादयोऽके यस्य सोजांकस्तत्सम्बुद्धौ हे अजांक! अथवा अजांक इव अजांकः कुंथुनाथसदृश इत्यर्थः। तदनन्तरत्वात् तद्वर्णत्वात् तत्सम्बुद्धौ भगो (भो) अजांक! हे श्रीजगन्नाथधीः! श्रीभिः कन्याहस्तितुरंगदेशादिलक्षणाभियुक्तं जगदिति श्रीजगत्! श्रीजगति नाथाः पञ्चम्लेच्छादिखण्डस्थराजानः। तैर्ध्यायते चिन्त्यत इति श्रीजगन्नाथधीः चक्रिपदावस्थायां षट्खण्डसाधने विशेषण

मिदम् । तत्स्थास्त्वचिन्तनमेव कुर्वन्ति अस्माकं प्रभुश्चक्रीति । एवं विशेषणविशिष्ट हे अर हे अरनाथ! तव युष्मदः प्रयोगः । तव ममौ ङसीति असौ पद् पदयुगलम् । पदिति पद्दन्नोमासहृन्निशामनृपृथेति पदादेशः । उक्तं हि स्वामिसमन्तभद्रैर्जिनशतालंकारे "पद्मया सहितायते" पद् मयासहि तायते । अं अंगीकारे । मां स्तुवन्तं नं मनुष्यं जगन्नाथनामानं । उ वितर्के । वर्द्धमानः पञ्चम्यन्तं । वा वेदना अर्थ-वशादसद्वेदना । तया ऋद्धं स्पष्टं मं पापं अनिति रक्षति वर्द्धमान् संसारः मिथ्यात्वं वा तस्माद्वर्द्धमानः । अपि निश्चयेन अवतु रक्षतु इत्यर्थः । किं विशेषणगोचरः पद् ? श्रेयान् । अतिशयेन श्रेष्ठः । अनुपमत्वात् । पुनः श्रीवासुपूज्यः । उ शंकरः आ नारायणाः बहुवचनत्वात् सुभौमनन्दिषेणबलदेवादयस्तैः सुपूज्यः श्रीवासु-पूज्यः । "आः स्वयंभूस्तथोक्ते स्यादिति" एतेन रुद्रनारायण-मुख्यैः पूज्यता कथिता । अथवा श्रीवासुपूज्यः श्रीव आस पूज्यः । तदा हे श्रीव लक्ष्मीपते तव पद् जनानां अं व्याधिं आस दूरीचकार । अस क्षेपणे । किंलक्षणः पद पूज्यः । भूयः पतिः । पा परिरक्षका दुर्गतिभयहरणी सुखकरणी तिः पूजा यस्य स पतिः । अथवा त्रिजगत्पतिः । पुनः श्रीद्रुमांकः । श्रीद्रुमा ऊर्ध्वरेखादयोऽ-काः शुभचिन्हानि यस्य स श्रीद्रुमांकः । भूयः अथधर्मः । अथाः सत्यवाचका धर्मा आचाराः श्रावकयत्यादिभेदेन यस्मादिति अथधर्मः । तर्हि धर्माचरणेन किं जातमित्युच्यते । पुनः हर्यंकः । हरीणां इन्द्रचन्द्रादीनां ईलक्ष्मीरंके सेवकानां यस्मात् स हर्यंकः । इन्द्रादिपदव्याः किं स्यादित्यनुयोगे वच्मः । पुष्पति पुत्रमित्रकलत्रादीनिति पुष्पन् संसारस्तस्यान्तो विनाशोऽस्मादिति पुष्पदन्तः । एतेन मोक्षप्राप्तिरित्युक्तम् । तर्हि मुक्त्या किमित्युच्यते । मुहुः अकश्रीसुपार्श्वः । अकं कुटिलगतिं श्रयति अकश्रीः एवंविधा ईः श्रीः अकश्रीः । संसार-

तरललक्ष्मीस्तस्या ईः निषेधः निवारणं जनानां सुपार्श्वे समीपे यस्मादिति अकृश्रीसुपार्श्वः । एतेन अनन्तचतुष्टयसुखमुक्तम् । पुनः शान्तिः पूजनाद् दुष्कर्मभ्यः शान्तयति शान्तिः। पुनः मप्रभः मस्य सूर्यस्य इव प्रभा यस्य स मप्रभः । उपलक्षणमेतत् कोटिसूर्याधिक-प्रभः । पुनः लविभुः । लानामिन्द्राणां विभुर्लविभुः । पुनः उमल्लिः उमतां मीमांसकसांख्यसौगतादिमतकुतर्कवितर्कयुक्तानां लिर्नाशो अस्मादिति उमल्लिः। पुनः नेमिः ने मनुष्ये अमिः अपरि-मितिः " शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्त्तेस्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशो-ज्ञः " इति । पुनः नमिः चक्रिपदावस्थायां षट्खण्डस्थराजानः मुनिपदव्यां द्वादशगणान् नामयति नमिः । पुनः सुमतिः शोभना मा मन्त्रा यस्यां सा सुमा । सुमा तिः पूजा यस्य स सुमतिः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्ति-
मुख्यशिष्यपंडितजगन्नाथनिर्मितायां अष्टादशजिनस्य अरनाथस्य
स्तुतिः समाप्तिमगमत् ।

अब आगे अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः— उ भो वृषभजिन भो मुनिसुव्रत जिन हे विमल हे सन् हे अजांक हे श्रीजगन्नाथधीः हे अर ! तव श्रेयान् श्रीवासु-पूज्यः पतिः श्रीद्रुमांकः अथधर्मः हर्यंकः पुष्पदन्तः अकृश्रीसुपार्श्वः शान्तिः मप्रभः लविभुः उमल्लिः नेमिः नमिः सुमतिः असौ पद् मां न अं उ वर्द्धमानः अपि अवतु ॥

अर्थः— इस श्लोकमें भी कुछ विशेषण तो भगवान् अरनाथके संबोधनरूपमें देते हैं और बाकीके विशेषण उनके चरणकमलोंके करते हैं। उ शब्द संबुद्धिवाचक है । भगवान् अरनाथके संबोधनमें लिखते हैं- हे वृषभजिन ! वृष शब्दका अर्थ धर्म है और भ का अर्थ शोभायमान है । जो वृष अर्थात् धर्मसे शोभायमान हों उनको वृषभ कहते हैं। जिन शब्दका अर्थ कामदेव है । जो धर्मसे सुशोभित होकर भी कामदेव हों

उनको वृषभजिन कहते हैं। भगवान् अरनाथ तीर्थंकर होकर भी कामदेव हैं इसलिये उनको वृषभजिन कहते हैं। फिर हे मुनिसुव्रतजिन! जिनके गणधर मुनियोंके साथ विराजमान हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं! भगवान् अरनाथके समवसरणमें भी कुंभार्य आदि तीस गणधर विराजमान थे इसलिये उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। अथवा हे मुनिसुव्रत! निर्ग्रंथ साधुओंके द्वारा सेवा करने योग्य। हे जिन! हे कामदेव! इस प्रकार अलग अलग दो शब्द मान कर दो संबोधन करना चाहिये। तथा हे विम! वि का अर्थ रहित है और म का अर्थ परिमाण है। जिनका कुछ भी परिमाण करनेमें न आवे—जो अनन्त गुणोंको धारण करनेके कारण अनन्त स्वरूप हों उनको विम कहते हैं। तदनंतर हे सत्! जन्म मरण जरा रहित। हे अजांक। सुभौम चक्रवर्ती और नंदिषेण बलदेव पुंडरीक आदि अर्द्ध चक्रवर्तियोंको अज कहते हैं। जिनके समीपमें सुभौम आदि चक्री और अर्द्धचक्री हुए हों उनको अजांक कहते हैं। अथवा जिनके बकरेका चिन्ह हो ऐसे भगवान् कुंथुनाथको अजांक कहते हैं। जो अजांकके समान हों उनको भी अजांक कहते हैं। भगवान् अरनाथ भगवान् कुंथुनाथके बाद हुए हैं इसलिये वे उन्हींके समान हैं अथवा उनके शरीरकी कांति भगवान् कुंथुनाथके समान है इसलिये उनको अजांक कहते हैं। हे श्री जगन्नाथधीः! कन्या हाथी घोडे देश आदि लक्ष्मीको श्री कहते हैं। ऐसी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाले जगतको श्रीजगत् कहते हैं। ऐसे जगतमें जो राजा हों उन सबको श्रीजगन्नाथ कहते हैं। श्रीजगन्नाथ कहनेसे पांचो म्लेच्छखंड और आर्यखंड सब देशके राजा महाराजा समझलेना चाहिए। उन राजा महाराजाओंके द्वारा जो धी अर्थात् ध्यान किये जांय चिंतवन वा स्मरण किये जांय उनको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं। भगवान् अरनाथका यह विशेषण चक्रवर्ती अवस्थामें छहों खंडके विजय करते समयका है। उस समय सब राजा महाराजा यही चिंतवन करते हैं कि हमारा स्वामी तो चक्रवर्ती ही है

इन सब विशेषणोंसे सुशोभित होनेवाले हे अर! आपके चरणकमल मेरी रक्षा करें। वे चरणकमल कैसे हैं? श्रेयान् हैं। अत्यंत श्रेष्ठ हैं। क्योंकि संसारमें उनकी कोई उपमा नहीं है। फिर वे चरणकमल श्रीवासुपूज्य हैं। उ का अर्थ महादेव है। आ का अर्थ नारायण है। उ और आ की संधि होकर वा बन जाता है। श्री का अर्थ शोभायमान है। जो सुशोभित रुद्र और नारायण हों उनको श्रीवा कहते हैं। जो श्रीवा अर्थात् सुशोभित रुद्रनारायणोंसे सुपूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। भगवान् अरनाथके चरणकमल भी सुभौम नंदिषेण बलदेव आदिके द्वारा पूज्य हैं इसलिए उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। अथवा श्रीव आस पूज्य ऐसे तीन परिच्छेद करने चाहिए। श्री का अर्थ लक्ष्मी है, व का अर्थ स्वामी है, आसका अर्थ दूर करना है। हे श्रीव! लक्ष्मीके स्वामी, आपके पूज्य चरणकमल लोगोंकी व्याधिको दूर करते हैं। इसलिये आपके चरणकमलोंको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। यहांपर उकार च्युत शब्द है। उकार को छोडकर अर्थ किया गया है। फिर जो चरणकमल पति हैं! प शब्दका अर्थ रक्षा करनेवाली, दुर्गति वा मिथ्यात्वके भयको दूर करनेवाली अथवा सुख देनेवाली है। तिका अर्थ पुजा है। भगवान् अरनाथके चरण कमलोंकी पुजा मिथ्यात्वको दूर कर सुख देनेवाली है इसलिये उन चरणकमलोंको पति कहते हैं। अथवा वे चरणकमल तीनों लोकोंके स्वामी हैं इसलिये भी पति कहलाते हैं। फिर जो चरणकमल श्रीद्रुमांक हैं। पैरके तलवेमें होनेवाली वृक्षके आकार आदिकी रेखाओंको श्रीद्रुम कहते हैं। जिनमें वृक्ष आदि रेखाओंका चिन्ह हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। तीर्थंकरोंके चरणकमलोंमें भी ऐसे चिन्ह रहते हैं इसलिये उन चरणकमलोंको श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो चरणकमल अथधर्म हैं। जो मिथ्या न हो उसको अथ कहते हैं। तथा श्रावक मुनि आदिके आचरणोंको धर्म कहते हैं। जिनके प्रसादसे मुनि श्रावकोंका यथार्थ धर्म प्राप्त हो उनको

अधधर्म कहते हैं। कदाचित् कोई यह कहे कि भगवानके चरणकमलोंके प्रसादसे धर्मकी प्राप्ति होती है इससे क्या लाभ हुआ ? तो इसके समाधानके लिये कहते हैं कि फिर वे चरणकमल हर्यक हैं। जिन चरणकमलोंके प्रसादसे सेवकोंके समीपमें इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी विभूति प्राप्त हो उनको हर्यक कहते हैं। कदाचित् कोई यह कहे कि इन्द्रादिक पदवीके प्राप्त होनेसे भी क्या होता है तो इसके लिये कहते हैं कि ये चरणकमल पुष्पदन्त हैं। जो पुत्र मित्र स्त्री आदिको पुष्ट करे ऐसे संसारको पुष्पत् कहते हैं। अन्त शब्दका अर्थ नाश है। ऐसे संसारका नाश जिनसे हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर भी यदि कोई यह कहे कि मोक्ष प्राप्त होनेसे भी क्या होता है तो उसके लिये कहते हैं कि, वे चरणकमल अक्श्रीसुपार्श्व हैं। अक् शब्दका अर्थ कुटिल गति है। श्री धातुका अर्थ गमन करना है। और ई शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। जो कुटिल गतिसे गमन करनेवाली लक्ष्मी हो ऐसी संसारकी चंचल लक्ष्मीको अक्श्री ई अथवा अक्श्री कहते हैं। इसमें एक ई शब्द और है। और उसका अर्थ निषेध करना है। जो संसारकी चंचल लक्ष्मीका निवारण करे ऐसी सदा स्थिर रहनेवाली अनन्तचतुष्टय रूप लक्ष्मीको अक्श्री ई ई कहते हैं। सबकी संधि होकर अक्श्री बन जाता है। तथा सुपार्श्वका अर्थ समीप है। जिन के प्रसादसे भव्य जीवोंके समीपमें ऐसी अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी प्राप्त हो जाय वे अक्श्रीसुपार्श्व कहाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि भगवान्के चरणकमलोंके प्रसादसे भव्य जीवोंको अनंत चतुष्टयरूप सुखकी प्राप्ति होती है। फिर वे चरणकमल शांति हैं। जो पुजा करनेसे अशुभ कर्मोंको नाश करदें उनको शांति कहते हैं। भगवान्के चरणकमलोंकी पुजा करनेसे भी अशुभ कर्मोंका नाश होता है इसलिये उन चरणकमलोंको शांति कहते हैं। फिर वे चरणकमल मप्रभ हैं। मशब्दका अर्थ सूर्य है। जिनकी प्रभा सूर्यके समान हो उनको मप्रभ कहते हैं। यह कथन उपलक्षण मात्र है। भगवान्के चरणकमलों की प्रभा करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक है किंतु सामान्य से उनको मप्रभ कहते हैं।

फिर वे चरणकमल लविभु हैं। ल शब्दका अर्थ इन्द्र है। जो इन्द्रोंके विभु वा स्वामी हों उनको लविभु कहते हैं। भगवान् के चरणकमल भी अनेक इन्द्रोंके स्वामी हैं इसलिये उनको लविभु कहते हैं। फिर वे चरणकमल उमलि हैं। मीमांसक सांख्य बौद्ध आदिके मतोंके कुतर्क वितर्कको उ कहते हैं। जिनके ऐसे कुतर्क वितर्क हों उनको उमत् कहते हैं। लि शब्दका अर्थ नाश होना है। जिनसे ऐसे कुतर्क वितर्क वालोंका नाश हो जाय—वे मिथ्यात्वको छोड कर मोक्षमार्ग में प्राप्त हो जांय उनको उमलि कहते हैं। फिर वे चरणकमल नेमि हैं। न का अर्थ मनुष्य है। न शब्दके सप्तमीका ने बनता है। यहांपर विभक्तिका लोप नहीं होता। मि शब्दका अर्थ परिमाण है। जिनका परिमाण न हो उनको अमि कहते हैं। ने अर्थात् मनुष्योंमें जिनका अमि अर्थात् परिमाण न हो उनको नेअमि, अथवा संधि हो जानेपर नेमि कहते हैं। भगवान् अरनाथके गुणोंको भी कोई वर्णन नहीं कर सकता इसलिये उनके चरणकमलोंको नेमि कहते हैं। फिर वे चरणकमल नमि हैं। जो दूसरोंसे नमस्कार करावें उनको नमि कहते हैं। फिर वे चरणकमल सुमति हैं। जिसमें अच्छे सुशोभित मंत्र हों उसको सुम कहते हैं। जिनकी ति अर्थात् पूजामें अच्छे सुशोभित मंत्र हों उनको सुमति कहते हैं। भगवान् अरनाथके चरण कमलोंकी पूजामें भी उत्तम मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है इसलिये उन चरणकमलोंको सुमति कहते हैं। हे भगवन् आपके ऐसे पद अर्थात् चरणकमल आपकी स्तुति करते हुए न अर्थात् मनुष्य पर्यायको धारण करनेवाले मुझको इस स्तुतिके करनेवाले विद्वद्वर पंडित जगन्नाथको अपि अर्थात् निश्चय करके वर्धमानसे रक्षा करें। व का अर्थ वेदना वा अशुभ वेदना है। ऋद्ध शब्दका अर्थ स्पष्ट वा प्रगट होना है। म शब्दका अर्थ पाप है और अव धातुका अर्थ रक्षा करना है। जो व अर्थात् अशुभ वेदनासे ऋद्ध अर्थात् प्रगट हो ऐसे म अर्थात् पापोंको वर्द्धम कहते हैं। और ऐसे पापोंकी जो अन् अर्थात् रक्षा

करे ऐसे संसारको वर्द्धमान् कहते हैं। उस वर्द्धमान् शब्दके पंचमी का एकवचन 'वर्द्धमानः' बनता है। अभिप्राय यह हुआ कि भगवान अरनाथके चरणकमल मुझ जगन्नाथ पंडितको इस वर्द्धमानसे अर्थात संसारसे रक्षा करें।

इति श्रीअरनाथजिन स्तुति.

अथ मल्लिनाथस्तुतिः।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभो रे विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

टीका—अथेति स्तुतिवाचकोऽयम्। असौ मल्लिः श्रीमल्लिनाथ एकोनविंशजिनेशिता। अथवा मल्लिरिति अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामः इति जैनेन्द्रकारः महाभाष्यकारोपि। मल्लेरिति षष्ठ्यन्तं ग्राह्यम्। अथवा सम्बन्धस्याष्टोत्तरशताभिधायकत्वात्। मल्लेर्धर्मः असौ मल्लिगदितमार्गः। वा पक्षान्तरं मां जगन्नाथधीरं किं न न अवतादपितु अवतु इत्यर्थः। किंलक्षणं मां. मुनिसुव्रतजिनोनम्। मुनीनपि सुष्ठु वृणोति आच्छादयति मुनिसुव्रतः स चासौ जिनः कामः मुनिसुव्रतजिनः। उपलक्षणमेतत् कामक्रोधलोभमानमायादयो गृह्यन्ते। मुनिसुव्रतजिनेन ऊनः कदर्थितः मुनिसुव्रतजिनोनः तं कषायपीडितं संसारिणं मां। आद्गुणः। पुनः पुष्पदं जिनपूजायामादौ द्रव्येषु पुष्पाणि द्यति निवारयति पुष्पदस्तं। एवं हि जलचन्दनादिक्रमेण पूजाकारकः मूलसंघस्थ इत्यर्थः। अन्यत्र द्रव्याणां विपर्ययः। किंलक्षणः मल्लिः श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः। श्रेयः अन् अणिमादिसम्पद् यस्यां सा श्रेयान्। विवक्षातः ऋन्नेभ्यो ङीबिति न ङीप्। सा श्रीर्येषां ते श्रेयान्श्रियः। ते च ते वासव इन्द्राः। अथवा वासुरिति वासुकिः शेषः। तैः तेन वा

पूज्यः । इति श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः । पुनः अवृषभजिनपतिः । अवृषात् पापात् भा अतिभीता इति अवृषभाः । “ पितृभ्रातृपितृव्येषु भोतिभीते भयाकुले ” । भीतार्थानां भयहेतुरिति पञ्चमी । अवृषभाश्च ते जिना विशाखमुख्या अष्टाविंशतिगणराजः तेषां पतिः अवृषभजिनपतिः । भूयः श्रीद्रुमांकः श्रियं निजचन्द्रिकामृतं द्रवति श्रीद्रुः स चासौ मश्चन्द्रः अंके कोष्ठे यस्य स श्रीद्रुमांकः । पुनः धर्मः धर्मवान् । मत्वर्थीयोऽकारः । पुनः हर्यंकः हरयः पद्मचक्रधरनन्दिमित्रबलभद्रदत्तनामवासुदेवबलीन्द्रप्रतिनारायणा अंके यस्य स हर्यंकः । पुनः तः ज्ञानवान् मत्वर्थीयोऽकारः । अथवा तनोत्यनन्तसुखमिति तः । बाहुलकत्वादुः । पुनः तवाक्श्रीः । ते ज्ञानं वक्ति तवाक्श्रीः केवलज्ञानमधिष्ठाता । तदुक्तं “ यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात् ” इति । यदा तव इति भिन्नं पदं तदा अक्श्रीः । अक्श्रियाः कुटिललक्ष्म्याः ईः निषेधो यस्मादिति अक्श्रीः । मुहुः सुपार्श्वः सत्समीपकः । शुभसंगतिरित्यर्थः । सत्समीपे किलाभ्यासमित्युच्यते । भूयः शान्तिः । शः परोक्षः स्वस्वपूर्वभवादिकथासम्बन्धः अन्तौ समीपे जनानां प्रत्यक्षो यस्मादिति शान्तिः । एतेन निजनिजभवावल्यो यत्र श्रूयन्ते । मुहुः पद्मप्रभः । तप्ततपनीयवर्णः । भूयः अरः नास्ति रा रमणी यस्य सोरः । कुमारदीक्षितत्वात् । पुनः विमलविभुः । विमला मलरहिताः पुण्यभाजः विभव इन्द्रादयो यस्मादिति विमलविभुः । एतेन जिनसेवां कृत्वा एते जन्म सफलं मन्यमानाः । पुनः ऋद्धमानः ऋद्धैर्मान्यते इति ऋद्धमानः । पुनः ईमिः ईं मोहं मीनाति ईमिः । पुनः मिः केवलज्ञानेन जगत्पदार्थसमूहं मिमीत इति मिः । पुनः अपि अपेक्षायां अजांकः । अजं चतुर्दशगुणस्थानं अंकते गच्छति अजांकः । पुनः सुमतिः शोभना मतिरस्मादिति सुमतिः । पुनः सन श्रेष्ठः ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां पण्डितजगन्नाथविरचितायां श्रीमल्लिनाथस्तुतिः पूर्णा ॥

अब आगे उनईसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—अथ श्रेयान्श्रीवासुपूज्यः अवृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकः धर्मः हर्यंकः तः तवाक्श्रीः (अथवा तव अकश्रीः) सुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः ऋद्धमानः ईषिः मिः अपि अजांकः सुमतिः सन असौ मल्लिः मह्लेर्धर्मः मुनिसुव्रतजिनोनं पुष्पदं मां श्रीजगन्नाथधीरं किं न अवतु इति न अपि तु अवतु एव।

अर्थ—अथ शब्द स्तुतिवाचक है। जो श्रीमल्लिनाथ भगवान् श्रेयानश्रीवासुपूज्य हैं। श्रेय शब्दका अर्थ कल्याण करनेवाला है। अन् शब्दका अर्थ अणिमा महिमा आदि ऋद्धियां हैं। जो अन् अर्थात् कल्याण करनेवाली हों उनको श्रेयान् कहते हैं। श्री शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। वासुका अर्थ इन्द्र है। जो वासु अर्थात इन्द्रादिक देवोंके श्रेय अर्थात् कल्याण करनेवाली अन् अर्थात् अणिमादिक संपदासे सुशोभित श्री अर्थात् लक्ष्मी हो उनको श्रेयानश्रीवासु कहते हैं। अथवा वासु शब्दका अर्थ वासुकि वा शेषनाग भी है। जो अणिमादिक लक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाले इन्द्रादिकोंके द्वारा पूज्य हों अथवा शेषनागके द्वारा (धरणेन्द्रके द्वारा) पूज्य हों उनको श्रेयान्श्रीवासुपूज्य कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथ ऐसे इन्द्र धरणेंद्रके द्वारा पूज्य हैं इसलिये उनको श्रेयान्श्रीवासुपूज्य कहते हैं। फिर जो भगवान अवृषभजिनपति हैं। वृष धर्मको कहते हैं और वृष अर्थात् धर्मके अभावको पापको अवृष कहते हैं। भ शब्दका अर्थ भयभीत होना है। लिखा भी है 'पितृभ्रातृपितृव्येषु भोतिभीते भयाकुले" अर्थात् "भका अर्थ अतिशय भय, भयभीत, पिता, भाई, काका है।" जो अवृष अर्थात पापसे भयभीत हों, पापोंसे डरते हों उनको अवृषभ कहते हैं। जिन गणधरोंको कहते हैं। तथा पति स्वामीको कहते हैं। जो पापोंसे डरनेवाले गणधरोंके स्वामी हों उनको अवृषभजिनपति कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथ भी विशाख आदि ऐसे अट्ठाईस गणधरोंके स्वामी हैं। इसलिये उनको अवृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान

श्रीद्रुमांक हैं। श्रीका अर्थ चन्द्रमाकी चांदनी है। द्रुका फैलना है। म का अर्थ चन्द्रमा है। तथा अंक का अर्थ समीप है। जो श्री अर्थात् चांदनीरूपी अमृतको द्रु अर्थात् फैलावे ऐसे म अर्थात् चन्द्रमाको श्रीद्रुम कहते हैं। ऐसा चन्द्रमा जिनके अंक अर्थात् समीप वा कोठेमें हो उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान मल्लिनाथके समवसरणमें श्री ज्योतिषी देवोंका इन्द्र चन्द्रमा स्वयं उपस्थित था इसलिये उनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् धर्म हैं। धर्मको फैलानेवाले हैं। तथा जो भगवान् हर्यंक हैं। नारायण चक्री आदिको हरि कहते हैं तथा अंक समीप को कहते हैं। जिनके समीपमें अर्थात् जिनके समयमें चक्रवर्ती नारायण आदि हुए हो उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथके समयमें पद्म चक्रवर्ती, नंदिमित्र बलभद्र दत्त वासुदेव और बलीन्द्र प्रतिनारायण हुए हैं इसलिये उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान त हैं त का अर्थ ज्ञानी वा सर्वज्ञ है। अथवा जो अनन्त सुखको देवें उनको त कहते हैं। भगवान् भी ऐसे हैं इसलिये उनको त कहते हैं। फिर जो भगवान् तवाक् श्री हैं। त शब्दका अर्थ ज्ञान है। वाक् शब्दका अर्थ कहना है। जो ज्ञानका वर्णन करे ऐसे केवलज्ञानको तवाक् कहते हैं। श्रीका अर्थ आश्रय अथवा प्राप्त करना है। जो केवलज्ञानको प्राप्त हो उनको तवाक्श्री कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथ भी केवलज्ञानको प्राप्त हुए हैं इसलिये उनको तवाक्श्री कहते हैं। स्वामी समंतभद्राचार्यने लिखा भी है " यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात् "। अर्थात् जिन भगवान् मल्लिनाथ स्वामीको समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष प्रगट करनेवाला केवलज्ञान प्रगट हुआ है उनको मैं नमस्कार करता हूं "। अथवा यदि तव शब्दको अलग रक्खा जाय और उसका संबंध धर्मके साथ लगाया तो यहांपर भगवानका विशेषण अक्श्री इतना ही लगाना चाहिये। अक् कुटिल रीतिसे गमन करनेको कहते हैं। श्री लक्ष्मीको कहते हैं तथा ई शब्दका अर्थ निषेध करना है। जिनके निमित्तसे कुटिल रीतिसे गमन करनेवाली संसारकी चंचल लक्ष्मीका निषेध हो और अनन्त सुखकी प्राप्ति हो उनको अक्श्री कहते हैं।

भगवान् मल्लिनाथसे भी अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है इसलिये उनको अक्श्री कहते हैं। फिर जो भगवान् सुपार्श्व हैं। सु का अर्थ सत् वा श्रेष्ठ है और पार्श्व समीपको कहते हैं। जिनके समीपमें सज्जन लोग रहते हों उनको सुपार्श्व कहते हैं। भगवानके समीप भी गणधरादिक महापुरुष ही सेवामें उपस्थित रहते हैं इसलिये उनको सुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान शांति हैं। श का अर्थ परोक्ष कथन है और अंतिका अर्थ समीप है। जिनके समीपमें परोक्ष कथन भी प्रत्यक्ष हो उनको शांति कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथके समीप भी भव्य जीवोंके अपने अपने पहले भवके सब कथन और संबंध प्रत्यक्ष हो जाते थे इसलिए उनको शांति कहते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भगवानके समीपमें आकर अनेक भव्य जीव अपने अपने भव पूछते थे। फिर जो भगवान पद्मप्रभ हैं। पद्का अर्थ प्राप्ति और मा का अर्थ लक्ष्मी है। जिसमें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनकी प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथके शरीरकी कांति भी तपाये हुए सुवर्णके समान थी इसलिए उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। अ का नहीं है और र का अर्थ स्त्री है। जिनके स्त्री न हो उनको अर कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथने कुमार अवस्थामें ही दीक्षा धारण की थी इसलिए उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। वि का अर्थ रहित है। मल का अर्थ पाप है और विभुका अर्थ इन्द्रादिक विभवशाली पुरुष है। जिनके प्रसादसे इंद्रादिक विभवशाली पुरुष भी पाप रहित हो जांय उनको विमलविभु कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथकी सेवा पूजा कर अनेक इन्द्रादिक देव पाप रहित हुए हैं। इसलिए उनको विमलविभु कहते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भगवानकी सेवा करनेसे इन्द्रादिक विभवशाली पुरुष भी अपना जन्म सफल मानते हैं। फिर जो भगवान् ऋद्धमान हैं। ऋद्ध शब्दका अर्थ महापुरुष है जो महापुरुषोंके द्वारा मान अर्थात् मान्य हों उनको ऋद्धमान कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथ भी इन्द्र चक्रवर्ती आदि पुरुषोंके द्वारा मान्य हैं

इसलिये उनको ऋद्धमान कहते हैं । फिर जो भगवान् ईमि हैं । ई मोह को कहते हैं और, मि नाश करनेको कहते हैं । जो मोहका नाश करें उनको ईमि कहते हैं । फिर जो भगवान् मि हैं । मि का अर्थ जानना है । जो अपने केवलज्ञानके द्वारा संसारके समस्त पदार्थोंको जानें उनको मि कहते हैं भनिका अर्थ तथा है। जो भगवान् अजांक हैं । जिसमें ज अर्थात् जन्म वा मरण न हो ऐसे चौदहवें गुणस्थान को अज कहते हैं । जो चौदहवें गुणस्थानमें अंक अर्थात् प्राप्त हों उनको अजांक कहते हैं । भगवान् भी चौदहवें गुणस्थानमें प्राप्त हुए हैं इसलिये उनको अजांक कहते हैं । फिर जो भगवान् सुमति हैं । जिनसे सु अर्थात् श्रेष्ठ मति अर्थात् बुद्धि हो, जिनके प्रसादसे जिनकी सेवासे सम्यग्ज्ञान वा सर्वोत्तम केवलज्ञान प्रगट हो उनको सुमति कहते हैं । तथा जो भगवान् सत् वा श्रेष्ठ हैं ऐसे श्री मल्लिनाथ भगवान उन्नीसवें तीर्थंकर क्या मुझ जगन्नाथ पंडितकी रक्षा न करेंगे ? नहीं नहीं, अवश्य करेंगे । मैं कैसा हूं ।मुनिसुव्रतजिनोन हूं । मुनिका अर्थ साधु है । सुव्रतका अर्थ आच्छादन करना, ढकना है तथा जिनका अर्थ काम है । जो मुनियोंको भी आच्छादन करे ऐसे कामको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं । यह उपलक्षण है । काम कहनेसे काम क्रोध मान माया लोभ आदि सब दोष लेने चाहिये । ऊन शब्दका अर्थ कदर्थित वा दुःखी है । जो काम क्रोधादिकसे दुःखी हो ऐसे संसारी जीवको मुनिसुव्रतजिनोन कहते हैं । मैं भी संसारी हूं इसलिये मैं मुनिसुव्रतजिनोन कहलाता हूं । फिर मैं पुष्पद हूं । जो भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें पहले ही पुष्पोंका निवारण करे उनको पुष्पद कहते हैं । श्रीमूल संघमें पूजा करनेका क्रम जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल अर्घ है । परंतु काष्ठादि संघमें जल चंदन पुष्प अक्षत इस क्रमसे है । मैं श्रीमूल संघमें हूं इसलिये पहले पुष्प नहीं चढाता । पहले अक्षत चढाता हूं इसलिये मैं पुष्पद हूं। अथवा मैं भगवान्को पुष्प समर्पण करता हूं इसलिये मैं पुष्पद हूं । इसप्रकार मैं आपका भक्त संसारी जीव हूं इसलिये हे मल्लिनाथ भगवन्! आप मेरी रक्षा कीजिये ।

॥ इति श्रीमल्लिनाथजिन स्तुति ॥

अथ श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥

टीका—भो मुनिसुव्रतजिन! मुनिसुव्रतनाम विंशतीर्थंकर । अत्राह कश्चित् ननु पद्येषु सुव्रत इति सर्वत्र । ततस्तीर्थंकरनाम नास्ति सुव्रतशब्देन तीर्थंकरनाम कथम्! "स यस्य वस्तीर्थंरथस्य सुव्रतः" इति द्विसंधानम् । "मुनिवृषभो मुनिसुव्रतो नव" इति समन्तभद्रः । नियमो व्रतमस्त्रियामित्यमरः । ततः सुव्रतशब्दोऽस्यार्थे ध्येतव्यः । इतिचेत् व्रतशब्दना-त्संयोगे गुरु इति सूत्रेण सु इत्यक्षरस्य गुरुत्वं प्रसज्येत । ततश्छन्दोहानिरिति चेन्न । लघुनापि समाधेयम् । तद्यथा नरा-मरारामक्रमं क्रमं क्रममित्यादिषु दृश्यते । मुनिसुव्रतश्चासौ जि-नश्च मुनिसुव्रतजिनः । तत्सम्बुद्धौ भो मुनिसुव्रतजिन! हे वृषभश्रेष्ठ! तव युष्मदः षष्ठ्यन्तस्य प्रयोगः । तव ममौ ङसीति सूत्रेण । असौश्रीः । अन्तरङ्गानन्तचतुष्टयलक्षणा बाह्या समवसृतिश्च । इति "नानुस्वारविसर्गौ तु चित्रभङ्गाय संमतौ" मां ऊनं नृमात्रमपि अवतु पालयतु । कस्मात्पुष्पदन्तः पुष्पन् संसारपरिभ्रमं कारयन् । अं व्याधिर्व्यसनं चेति पुष्पदन् । तस्मा-त्पुष्पदन्तः । "पञ्चम्यास्तसिल्" इत्यनेन तसो विधानम् । "अमान्तो त्र अ—संवादे परब्रह्मप्रवाचकः व्यसने ध्याधिते व्याधौ ज्ञानविज्ञानवन्दने । तस्मान्मां पालयतु । किंलक्षणं मां श्रीजगन्नाथधीरम् । श्रीजगन्नाथ तीर्थंकरदेवं ध्यायत इति श्रीजगन्नाथधीः एवंविधो रो ध्वनिर्यस्य स तं मां । अन्तरङ्गबाह्यलक्ष्म्योरुभयोर्विशेषणानि अतः । तथाहि—किंविशे-

षेणया श्रीः श्रेया भवभीतिराश्रयणीया। समवसरणलक्षणा। अभ्यन्तरपक्षे नृणां त्रयोदशचतुर्दशगुणस्थानस्थानां रा गोचरा या यथार्थो यस्याः सा श्रेया। " यो यथार्थे स्त्रियां च या " पुनः वा पक्षान्तरे। सुपूज्या शोभना कंटकोपलादिरहिता गंधोदकवृष्ट्या पूः पवित्रा ज्या पृथिवी यत्र सा पूज्या। उक्तं हि " व्युपशमितधूलिकण्टकतृणकीटकशर्करोपलं प्रकुर्वन्ति " । अन्यच्च, " प्रकरन्ति सुरभिगंधिगन्धोदकवृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेरिति "। अभ्यन्तरपक्षे सुपूज्या पूजनीया। 'निश्चयरत्नत्रयं वंदे' इति वचः। पुनः श्रीद्रुमांका । श्रीद्रुमाः कल्पवृक्षाः अंके यस्याः सा श्रीद्रुमांका। अशोकवृक्षचैत्यवृक्षादिरचनायुक्ता। " शालः कल्पद्रुमाणामिति "। पक्षे द्रवति कर्माणि द्रुः। एवंभूतो मो मोक्षः इति द्रुमः। श्रियोपलक्षितो द्रुमः इति श्रीद्रुमस्तस्यांका चिन्हीभूता श्रीद्रुमांका। भूयः उः अहो। थधर्मा। थानां देवकूटानां सुरनिर्मितमानस्तम्भस्तूपादीनां धर्मो रचना यस्यां सा थधर्मा। " देवकूटे कषाये स्त्री दृढे परिवृढेऽपि था "। पक्षे थः अतिगम्भीरः शास्वतो धर्मः स्वभावो यस्याः सा थधर्मा। पुनः ऊहरी ऊहानां वितर्काणां अनुत्तरवाद्युत्थपरमतभिदानां री श्रवणं यत्र सा ऊहरी। अथवा ऊहानां परवादिवितर्काणां ली लवनं यस्यां सा ऊहरी। " ली पुंसि लावे शब्दे लीधातुवलावने त्रिषु "। रकारलकारयोः सावर्ण्यम्। अथवा ऊहरी ऊनां वितर्काणां परवादिनां हरतीति ऊहरी। पक्षे ऊः पीडनं संसारस्थितिस्तं हरतीति ऊहरी। पुनः अकुश्रीः। कुटिलगतिं श्रयति अकुश्रीः। प्रभोर्विहारत्वात्। यत्र प्रभुस्तत्रैषा। अथवा अकुश्रियां गृहस्थानां ईर्मोहो यस्यां सा अकुश्रीः। पक्षे अकुश्रियास्तरललक्ष्याः ईर्निषेधो यस्याः सा अकुश्रीः। स्वपदप्राप्तिरित्युक्तम्। कर्मोपाधिवशोद्भूतसंसृतिधनादिसंपत्तिनाशे स्वपदप्राप्तिवेत्युक्तम्। पुनः शान्तिः। शास्तापसा मुनयो अन्तौ समीपे यस्याः सा शान्तिः।

" निर्ग्रंथकल्पवनिताव्रतिकाभभौमनागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः " इति वचः । " सः सोमे सोमपानेपि सूर्ये पक्षिणि तापसे वृषेच " शः सदानन्दं । अथवा शः वृषं पुण्यं जनानामन्तौ यतः सा शान्तिः । पक्षे शः सदानन्दः अनन्तचतुष्टयलक्षणः अन्तौ यस्याः सा शान्तिः । नहि संसारपरलक्ष्म्या सदानन्दो वोभोति । मुहुः ऋद्धमाना । अर्द्धार्द्धहीनादिभेदेन सार्द्धद्वययोजनमिता पक्षे ऋद्धानां षड्द्रव्याणां मानो यस्यां सा ऋद्धमाना । पुनः उ अहोप्यजांका । प्यजाः सागरसमानगंभीरमुनयस्तेषां अंकाः पिच्छकमंडल्वादयो यस्याः सा प्यजांका । पक्षे अपि निश्चयेन अजांका । अजैर्योगिभिरंक्यते गम्यत इति अजांका । पुनः अमल्लिः । अमत् निगर्वता । तल्लाति गृह्णाति जनाय इति अमल्लिः । कथं उ वितर्के । पक्षे अः कामक्रोधाग्निरस्ति यस्मिन् सोमान् कर्मसुभटस्तं लवयन्ति द्रवीकुर्वन्ति जना यस्याः सा अमल्लिः । पुनः सुमतिः शोभना मतिर्यतः इति सुमतिः उभयत्र । किंविशेषणस्त्वं ? अनु पालकः । पुनः जिनपतिः । जिनानां मल्लयाद्यष्टादशगणधराणां पतिरिति जिनपतिः । मुहुः अकः । अं ब्रह्म कायति वक्ति अकः । पुनः सुपार्श्वः समचतुरस्त्रः । पुनः पद्मप्रभः नीलवर्णकमलदीप्तिः । उक्तं च परिणतशिखिकंठरागयेति । भूयः अरः । नास्ति रः कामक्रोधादिलक्षणः अग्निर्यस्य सोरः । अथवा अरः निर्ग्रंथः पूर्वोक्तसंपदयुतोपि निर्ग्रंथः । वाचिकल्पार्थे चित्रमेतत् । अनया सम्पदा युतोपि निर्ग्रंथ इति । भूयः विमलविभुः । विमलानां हरिषेणचक्रिरामचंद्रलक्ष्मणरावणादीनां विभुर्विमलविभुः । तत्समये हि एते । पुनः नेमिः तीर्थरथचक्रे नेमिरिव नेमिः । उक्तं च द्विसंधानकृता— तीर्थरथस्य सुव्रतः प्रवर्तको नेमिरनश्वरीं क्रियादिति । पुनः नमिः न मीयते परिच्छिद्यतेन्यसादृश्येनेति नमिः । अनुपमत्वात् । अथवा न मीयते परैः सत्त्वादिलक्षणच्युतैरेकान्तवादिभिरिति

नमिः। पद्यश्च " स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम् । इति जिन सकलज्ञलांछनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते " इति। पुनः सन् अतिशयेन श्रेष्ठः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुत्येकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्ति-मुख्यशिष्यसज्जनजगन्नाथविरचितायां विंशतीर्थंकरस्य मुनिसुव्रतस्य स्तुतिः पूर्णा।

बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रतनाथकी स्तुति।

अन्वयः—अन् जिनपतिः अंकः पद्मप्रभः सुपार्श्वः अरः विमलविभुः नेमिः नमिः सन् हे वृषभ! हे मुनिसुव्रतजिन! तव श्रेया वा सुपूज्या श्रीद्रुमांका उ धर्मा ऊहगी अकृश्रीशांतिः ऋद्धमाना अप्यजांका अमल्लिः उ सुमतिः असौश्रीः श्रीजगन्नाथधीरं ऊनं मां पुष्पदंतः अवतु।

अर्थ—जो भगवान मुनिसुव्रतस्वामी अन अर्थात् सबके पालन करनेवाले हैं। फिर जो भगवान् जिनपति हैं। जो गणधरोंके स्वामी हों उनको जिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् अंक हैं। अं का अर्थ ब्रह्म है तथा क का अर्थ कहना है। जो परब्रह्मका स्वरूप निरूपण करें उनको अंक कहते हैं। फिर जो भगवान् सुपार्श्व हैं। जिनके शरीरके सब भाग बहुत सुन्दर हों उनको सुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ हैं। जिनके शरीरकी कांति नील कमलके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् मुनिसुव्रतका शरीर नील वर्णका था। फिर जो भगवान् अर हैं। र का अर्थ अग्नि है। अग्नि शब्दसे यहांपर काम क्रोधादिरूप अग्नि लेनी चाहिये। जिनके काम क्रोधादिरूप अग्नि न हो उनको अर कहते हैं। अथवा जिनके पास चौबीसो प्रकारका र अर्थात् परिग्रह न हो उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। मल शब्दका अर्थ पाप है। जो पाप रहित हों उनको विमल कहते हैं। चक्रवर्ती ना-

रायण आदि भी पुण्यकर्मके उदयसे होते हैं इसलिये पाप रहित होनेके कारण उनको भी विमल कहते हैं। जो उनके स्वामी हों उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जो तीर्थरूपी रथके पहियों को चलानेके लिय धुराके समान हों उनको नेमि कहते हैं। फिर जो नमि हैं। जो किसीके द्वारा न जाने जांय उनको नमि कहते हैं। अथवा संसारमें अन्य किसीमें भी जिनकी समानता न हो उनको नमि कहते हैं। अथवा जो सत्ता महासत्ता आदिके लक्षणोंको नहीं जानते ऐसे एकांतवादी लोग जिनके स्वरूपको न जान सकें उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सन् अर्थात् अतिशय श्रेष्ठ हैं। इन सब विशेषणोंसे सुशोभित होनेवाले हे वृषभ! वृष श्रेष्ठको कहते हैं और भ कांतिको कहते हैं। हे मुनिसुव्रतजिन। हे बीसवें तीर्थंकर! आपकी यह अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी मेरी रक्षा करो। यहां तीर्थंकरका वाचक सुव्रत शब्द यदि माना जाय तो छंदोभंग होता है? परन्तु इसका समाधान यह है कि कहीं कहींपर गुरु वा दीर्घ अक्षर भी लघु माना जाता है। जैसे ' नरामरारामक्रमं क्रमं क्रमम् ' इसमें क्रम शब्दके पहले रामके अंतका अकार गुरु होकर भी लघु माना है। इस प्रकार हे मुनिसुव्रत भगवन्! आपकी यह अनन्त चतुष्टयरूपी अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणरूपी वरिंग लक्ष्मी मेरी रक्षा करो।

यहांपर श्रीवासुपूज्य में जो श्री है उसका अर्थ लक्ष्मी होता है। यद्यपि इस श्रीमें प्रथमांत विभक्तिका विसर्ग नहीं है जो कि अर्थके अनुसार होना चाहिए। परन्तु यह चित्र श्लोक है। चित्र श्लोकमें अनुस्वार वा विसर्ग हों और उन्हें छोडकर अर्थ करना पडे तो भी कोई हानि नहीं। तथा यदि विसर्ग न हों और उसका अर्थ विसर्ग लगाकर ही करना पडे तो भी कोई हानि नहीं। यहांपर विसर्ग मान लेना चाहिए। लिखा भी है " नानुस्वारविसर्गौ तु चित्रभंगाय सम्मतौ " अर्थात अनुस्वार और विसर्गोंसे चित्रश्लोकमें किसी प्रकारका भंग नहीं होता।

अब आगे अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके विशेषण लिखते हैं वह लक्ष्मी कैसी है ? श्रेया है। श्रेयका अर्थ आश्रय लेने योग्य है। संसारसे भयभीत हुए भव्य जीव समवसरणरूप बहिरंग लक्ष्मी का आश्रय लेते हैं। इसलिये उनको श्रेया कहते हैं। तथा अंतरंग लक्ष्मीके पक्षमें श्र शब्दका अर्थ कर्मोंके नाश करनेवाले तेरहवें चौदहवें गुणस्थान है। ए का अर्थ उसके गोचर अथवा उसमें होना है तथा य का अर्थ यथार्थ है। जो अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी यथार्थ रीतिसे तेरहवें चौदहवें गुणस्थानमें ही प्रगट हो उसको श्रेया कहते हैं। अनन्त चतुष्टय वहीं प्रगट होते हैं इसलिये भगवानकी अंतरंग लक्ष्मी श्रेया है। वा अथवा वह लक्ष्मी सुपूज्या है। सु का अर्थ शोभायमा. है। पू का अर्थ पवित्र है और ज्या का अर्थ पृथिवी है। जहांकी पृथवी अत्यंत शोभायमान और पवित्र हो उसको सुपूज्या कहते हैं। भगवान् मुनिसुव्रतकी समवसरण रूप बहिरंग लक्ष्मीकी पृथ्वी कंकड पत्थर कांटे आदिसे रहित होनेके कारण अत्यंत शोभायमान थी और गंधोदक वृष्टसे अत्यत पवित्र थी इसलिये उस लक्ष्मीको सुपूज्या कहते हैं। लिखा भी है "व्युपशमितधूलिकंटकतृणकीटकशर्करोपलं प्रकुर्वन्ति" अर्थात् "देव लोग समवसरणकी पृथवीको धूल कांटे तृण कीडे कंकर पत्थर आदि सबको हटा कर बहुत ही सुशोभित कर देते हैं" और भी लिखा है "प्रकिरन्ति सुरभिगंधि गंधोदकवृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेः" अर्थात् "इन्द्रकी आज्ञासे देव सुगंधित और मनोहर गंधोदककी वर्षा करते थे"। अंतरंग लक्ष्मीके पक्षमें वह अनंत चतुष्टय रूप लक्ष्मी सुपूज्य और अच्छी तरह पूज्य है। फिर वह लक्ष्मी श्रीद्रुमांका है। समवसरणरूप बहिरंग लक्ष्मीके पक्षमें श्रीद्रुम कल्पवृक्षोंको कहते हैं और अंक गोदको कहते हैं। जिसकी गोदमें जिसके भीतर कल्पवृक्ष हों उसको श्रीद्रुमांक कहते हैं। समवसरण में भी अशोक वृक्ष चैत्यवृक्ष कल्पवृक्ष आदिकी रचना है। अंतरंग पक्षमें—श्री शब्दका अर्थ अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित है। द्रु का अर्थ

कर्मोंका नाश करना है। म का अर्थ मोक्ष है। द्रु अर्थात् कर्मोंके नाश करनेवाले म अर्थात् मोक्षको द्रुम कहते हैं। जो मोक्ष अनेक प्रकार की लक्ष्मीसे सुशोभित हो उसको श्रीद्रुम कहते हैं। उस मोक्षका जो चिन्ह हो जिसके होनेसे मोक्ष अवश्य प्राप्त हो उसको श्रीद्रुमांका कहते हैं। अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी उसका चिन्ह है। उसके प्राप्त होनेपर मोक्ष अवश्य प्राप्त होता है इसलिये उसको श्रीद्रुमांका कहते हैं। फिर उ अर्थात् आश्चर्यके साथ कहना पडता है कि वह लक्ष्मी थधर्मा है। थ शब्दका अर्थ देवकूट है। देवकूट शब्दसे देवोंके द्वारा निर्माण किये हुए मानस्तंभ स्तुप आदि लेना चाहिये। धर्म शब्दका अर्थ रचना है। जिसमें थ अर्थात् मानस्तंभ आदिकी धर्म अर्थात् रचना हो उसको थधर्मा कहते हैं। समवसरणमें भी मानस्तंभ स्तूप सरोवर शाल आदि की रचना है इसलिये उसकी लक्ष्मी वा शोभाको थधर्मा कहते हैं। अंतरंग पक्षमें थ का अर्थ अत्यंत गंभीर वा सदा रहनेवाला नित्य लेना चाहिये। धर्मका अर्थ स्वभाव है जिसका स्वभाव अत्यंत गंभीर वा नित्य हो उसको थधर्मा कहते हैं। अनंत चतुष्टयरूप लक्ष्मीका स्वभाव भी गंभीर और नित्य है इसलिये उसे थधर्मा कहते हैं। फिर वह लक्ष्मी ऊहरी है। वितर्क करनेवालों को अथवा जिनका कोई उत्तर न दे सके ऐसे अन्य वादियों को परास्त करनेवालों को ऊह कहते हैं। री शब्दका अर्थ शब्द है। जहांपर समस्त अन्य वादियों को परास्त करनेवालों के शब्द सुने जांय उसको ऊहरी कहते हैं। समवसरणमें भी ऐसे विद्वानों के शब्द सुनाई देते हैं इसलिये उसको ऊहरी कहते हैं। अथवा र और लकी परस्पर सवर्णता है। र और ल में कोई भेद नहीं माना जाता। अतएव री शब्दके स्थानमें ली शब्द लेना चाहिये। ली का अर्थ काटना वा नाश करना है। ऊह शब्द का अर्थ अन्य वादियों के द्वारा उठाये हुए तर्क वितर्क हैं। जिसमें अन्य वादियोंके द्वारा उठाये हुए तर्क वितर्कों का नाश हो उसको ऊहरी कहते हैं। अथवा ऊ शब्दका अर्थ अन्य वादियों के द्वारा उठाये हुए तर्क वितर्क हैं और हरी शब्दका अर्थ

हरण करनेवाला है। जो अन्य वादियोंके द्वारा उठाये हुये तर्क वितर्कों को हरण करे उसको ऊहरी कहते हैं। समवसरणमें ऐसे तर्क वितर्कोंका नाश होता है हरण होता है इसलिये उसे ऊहरी कहते हैं। अंतरंग पक्षमें ऊ शब्द का अर्थ पीडा वा संसारकी स्थिति है। उसको जो हरी अर्थात् हरण करे उसको ऊहरी कहते हैं। अनंत चतुष्टयरूप लक्ष्मी भी संसार परिभ्रमणको दूर करती है इसलिये उसको ऊहरी कहते हैं। फिर जो लक्ष्मी अक्श्री है। अक् शब्दका अर्थ कुटिल गतिसे गमन करना है और श्री शब्दका अर्थ आश्रय है। जो कुटिल गतिका आश्रय ले उसको अक्श्री कहते हैं। समवसरणरूप लक्ष्मी भी भगवानके विहारके साथ साथ फिरती है। जहां भगवान् विहार करते हैं वहीं जाती है इसलिये उसको अक्श्री कहते हैं। अथवा जिनके कुटिल गमन करनेवाली संसारकी चंचल लक्ष्मी हो ऐसे गृहस्थोंको अक्श्री कहते हैं। तथा ई शब्दका अर्थ मोह है। जिसमें गृहस्थोंका मोह हो उसको अक्श्री कहते हैं। समवसरण में भी गृहस्थोंका अत्यंत मोह होता है इसलिये उस लक्ष्मीको अक्श्री कहते हैं। अंतरंग पक्षमें ई शब्दका अर्थ निषेध लेना चाहिये। जिसमें संसार की चंचल लक्ष्मीका निषेध हो उसको अक्श्री कहते हैं। अनंत चतुष्टयके प्राप्त होनेपर चंचल लक्ष्मीका नाश अपने आप हो जाता है। शुद्ध आत्माकी प्राप्ति हो जाती है इसलिये उसको अक्श्री कहते हैं। लिखा भी है "कर्मोंके उदयसे होनेवाली संसार संबंधी धन संपत्तिका नाश होनेपर शुद्ध आत्माकी ही प्राप्ति होती है। फिर जो लक्ष्मी शान्ति है। शका अर्थ मुनि है और अंतिका अर्थ समीप है। जिसके समीपमें निर्ग्रंथ मुनि हों उसको शांति कहते हैं। समवसरणमें भी बारह कोठोंमेंसे एक कोठेमें मुनि विराजमान रहते हैं इस लिये उसको शांति कहते हैं। अथवा शका अर्थ पुण्य लेना चाहिये। जिनके अन्ति अर्थात् समीपमें रहकर भव्य जीवोंको पुण्य प्राप्त हो उसको शांति कहते हैं। समवसरणमें भी जीवोंको पुण्यकी ही प्राप्ति होती है इसलिये उसको शांति कहते हैं। अन्तरंग पक्षमें श का अर्थ सदानंद

लेना चाहिये। जिसके अंति अर्थात् समीपमें सदानंद अर्थात् अनंतसुख हो उसको शांति कहते हैं। अनंत चतुष्टयके साथ ही अनत सुख प्राप्त होता है। संसारकी लक्ष्मीके साथ वह सुख प्रगट नहीं होता इसलिये उसको शान्ति कहते हैं। फिर वह लक्ष्मी ऋद्धमाना है। आधा आधा योजन कम होती हुई ढाई योजन की है भगवान् ऋषभदेवका समवसरण बारह योजनका था। श्री अजितनाथका साढे ग्यारह योजनका, श्रीसंभव नाथका ग्यारह योजनका था। इसी प्रकार आधा आधा योजन कम होते हुए भगवान् मुनिसुव्रतनाथका समवसरण ढाई योजन का था। अंतरंग पक्षमें ऋद्ध शब्दका अर्थ छहों द्रव्य लेना चाहिये और मान शब्दका अर्थ प्रमाण करना वा जानना है। जिसमें समस्त द्रव्योंका ज्ञान हो उसको ऋद्धमाना कहते हैं। अनन्त चतुष्टयके प्रगट होनेपर ही समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है इस लिये उसको ऋद्धमाना कहते हैं। फिर उ अर्थात् आश्चर्य है कि वह लक्ष्मी प्यर्जांका है। प्यजा शब्दका अर्थ समुद्रके समान गंभीरताको धारण करनेवाले महामुनि है। अंकका अर्थ चिन्ह है। जिसमें प्यजा अर्थात् महा मुनियोंके अंक अर्थात् पीछी कमंडलु आदि चिन्ह हों उसको प्यर्जांका कहते हैं। समवसरणमें भी मुनियोंके ये चिन्ह मुनियोंके साथ थे इसलिये उस समवसरण लक्ष्मीको प्यर्जांका कहते हैं। अंतरंग पक्षमें अपिका अर्थ निश्चयसे है। अज शब्दका अर्थ आगे जन्म मरण धारण न करनेवाले महामुनि है। और अंक शब्दका अर्थ प्राप्त होना है। निश्चयसे जो महा मुनियोंके द्वारा प्राप्त हो उसको अप्यर्जांका कहते हैं। अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी भी आगे जन्म मरण धारण न करनेवाले महा मुनियोंके द्वारा प्राप्त होती है इसलिये उसको अप्यर्जांका कहते हैं। फिर वह लक्ष्मी अमलि है। मत् शब्दका अर्थ अभिमान है। तथा अभिमान न रहनेको अमत् कहते हैं। लि का अर्थ प्राप्त करना वा ग्रहण करना है। जिसके संबंधसे लोगोंमें अभिमान न रहे जिसके मानस्तंभको देखने मात्रसे ही अभिमान

नष्ट होजाय उसको अमलि कहते हैं । समवसरणमें भी किसीका अभिमान नहीं रहता इसलिये उसको अमलि कहते हैं । अंतरंग पक्षमें—अ का अर्थ काम क्रोधादिरूप अग्नि है । वह जिसमें हो उसको अमत् कहते हैं । काम क्रोधादिक कर्मोंके उदयसे होते हैं इसलिये कर्मोंको अमत् कहते हैं । तथा लिका अर्थ नाश करना है । जिसके निमित्तसे भव्य जीव कर्मोंका नाश करदें उसको अमलि कहते हैं । अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी के निमित्तसे ही कर्मोंका नाश होता है इसलिये उसको अमलि कहते हैं । फिर वह लक्ष्मी सुमति है । सु का अर्थ श्रेष्ठ है और मतिका अर्थ ज्ञान है । जिसके निमित्तसे श्रेष्ठ ज्ञान हो उसको सुमति कहते हैं । समवसरणके निमित्तसे भी जीवोंको सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है । तथा अनंत चतुष्टयके निमित्तसे भी सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है इसलिये उन दोनों प्रकारकी लक्ष्मीको सुमति कहते हैं । इन सब विशेषणोंसे सुशोभित होने वाली भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी मुझको पुष्पदंत अर्थात् पुष्पदंसे रक्षा करो । पुष्पत् शब्दका अर्थ संसारमें परिभ्रमण कराना है । और अं का अर्थ व्याधि है । जो संसारमें परिभ्रमण करावे ऐसी व्याधि वा व्यसनको पुष्पदं कहते हैं । पुष्पदं शब्दसे पंचमी अर्थमें तस् प्रत्यय होकर पुष्पदंत बनता है । भगवान् मुनिसुव्रतकी अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी पुष्पदं अर्थात् संसारमें परिभ्रमण करानेवाली व्याधियोंसे अथवा ऐसे सर्व व्यसनोंसे मेरी रक्षा करो । मैं कैसा हूं ! ऊन अर्थात् मनुष्य पर्यायको धारने वाला हूं । तथा श्री जगन्नाथधीर हूं । तीर्थंकर परमदेवको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं । र शब्दका अर्थ ध्वनि वा शब्द वा उपदेश है । "समस्त भव्य जीवों को श्री तीर्थंकर परमदेवका ही ध्यान करना चाहिये" इसप्रकार जिसका उपदेश सदा होता रहे उसको श्रीजगन्नाथधीर कहते हैं । मैं भी सदा यही उपदेश देता रहता हूं । इसलिये मैं श्रीजगन्नाथधीर हूं । हे मुनिसुव्रत भगवान आपकी अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी ऐसे मुझको संसार की व्याधियोंसे रक्षा करो ।

इति श्री मुनि सुव्रत जिन स्तुति ॥

अथ नमिनाथस्तुतिः ।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका— असौ नमिः श्रीनमिनाथतीर्थंकृत श्रीजगन्नाथधीरमवतात् । किमर्थम् ? श्रे शृणाति पापं दुःखं वेति शा कल्याणं तस्मै श्रे कल्याणाय । असौ कः यः नमिः यान् याचकान् अथवा अतिकुत्सितान् अज्ञानान रुजालग्नान् वा अवति स्मसौ श्रीजगन्नाथधीरमपि अवतात् । “ याचके योतिकुत्सने यो जातारिरुजालये ” उक्तं हि– “ अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि ” इति । अपिशब्दोत्र चकारार्थे । च पुनः यः नमिः मां । म पापं तदेव अं व्याधिरिति मां । अथवा मात् पापात् अं व्याधिरिति मां कर्मपदं । आस दूरीकृतवान । असु क्षेपणे । जनानामित्यध्याहारः । उकारश्च्युतोत्र । स एवंविधः श्रीजगन्नाथधीरमपि अवतात् । किंविशेषणगोचरः । श्रीवा । श्रियं वृणोति श्रीवा । क्विबन्तः । अथवा श्रीर्लक्ष्मीस्तस्या ईः निषेधो यस्मादिति श्रीः पाप श्रियं वारयति आच्छादयति श्रीवा, सेवकेभ्यः सुखदः । पुनः पूज्यः पूजनीयः । अथवा षण्मासात्पूर्वं पूः पवित्रा हिरण्मयी ज्या भूर्यस्मादिति पूज्यः । अथवा मेरौ जन्मकल्याणसमये जलैः पूः पवित्रा ज्या यतः इति पूज्यः । “ नूनं नद्यस्तदाभूवन्नभिषेकाम्भसा विभाः ” इति । अथवा विहारेण पूः ज्या यस्मादिति पूज्यः । पुनः वृषभजिनपतिः । वृषभानां रुचिरकान्तीनां जिनानां सुप्रभार्यादीनां सप्तदशगणेशानां पतिः वृषभजिनपतिः । पुनः सन अतिशयेन श्रेष्ठः । पुनः श्रीद्रुमांकोथधर्मोहर्यंकः । श्रीद्रुमांकः समवसरणं । उवत समुद्रवत् थधर्माः

उथधर्माः न्यायश्च आचारा वा। तेषां तेषु वा ऊहेषु विचारेषु रिः श्रमो येषां ते उथधर्मोहरयः। अनन्तधर्मात्मकवस्तुविचारानभिज्ञाः। अंकः पुष्पदन्त इति। अमा ज्ञानेन युक्तः कः शब्दः इति अंकः। "कः काकशब्दयोः" इति। पुष्पाणि च ते अन्ताः जीवादिपदार्थाः इति पुष्पदन्ताः। अंकया ज्ञानध्वनिना पुष्पदन्तेषु अवः वितर्का येषां ते अंकःपुष्पदन्तावः। एतेन जिनोक्तनिपुणा मतिश्रुतावधियुता मुनयः उथधर्मोहरयश्च अंकः-पुष्पदन्तावश्च उथधर्मोहर्यंकः पुष्पदन्तावः। ते च ते मुनयः उथ-धर्मोहर्यंक पुष्पदन्तोमुनयः। श्रीद्रुमांकैः उथधर्मोहर्यंकःपुष्पदन्तो-मुनिभिः अपण्डितैः पण्डितैश्च सुव्रताः परिवृताः जिना यस्य स श्रीद्रुमांकोथधर्मोहर्यंकःपुष्पदन्तोमुनिसुव्रतजिनः। पुनः अनन्त-वाक्श्रीसुपार्श्वः। अनन्तवाक् अनन्तचतुष्टयनाम्नी श्रीसमवसर-णादिः ते द्वे श्रीसुपार्श्वे यस्य सोनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः पुनः शान्तिः। पापं हिंसादिकं शान्तयति शांतिः। तदुक्तम् "अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्" इति। पुनः पद्म-प्रभः। हिमाभः। भूयः अः निर्भयः। पुनः विमलविभुः विमः लक्ष्मासो विभुश्चेति। अथवा विमलानां जयसेनचक्र्यादीनां विभु-र्विमलविभुः। पुनः वर्द्धमानः जनानामनादिमिथ्यात्वनायुरोगोपशा-न्तये वर्द्धमान इव वर्द्धमानः एरण्डसमानः। "चञ्चुः पञ्चाङ्गुलामण्ड वर्द्धमानव्यडम्बकाः इत्यमरः"। पुनः अजांकोमल्लिः अजस्य ब्रह्मणः अंकः आसनं कमलमित्यजांकः। 'विरंचिः कमलासनः' इति। तस्य उः प्राप्तिः रक्षणं वेति अजांकोः अजांकोवमल्लते बिभर्ति अजांकोमल्लिः। उत्पलांक इत्यर्थः। पुनः नेमिः ने नरे अमिः नास्ति मीर्हिंसा यस्येति नेमिः। अत्र सप्तम्या अलुक्। दयालुः। उपलक्षणमेतत् एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियाणां रक्षणम्। पुनः सुमतिः सुः पूजनीया मतिर्यस्य सोयं सुमतिः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां पण्डितजगन्नाथनिर्मितायां एकविंशजिनस्य श्रीनमिनाथस्य स्तोत्रं समाप्तं। पञ्चविंशार्थश्च पूर्णः

अब आगे इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः— श्रीवा पूज्यः वृषभजिनपतिः सन् **श्रीद्रुमांकोथ-धर्मोहर्यंकः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्वः शान्तिः पद्मप्रभः अरः विमलविभुः वर्द्धमानः अजांको मल्लिः नेमिः सुमतिः असौ नमिः अपि मां आस यथा यान् अवति तथा श्रीजगन्नाथधीरं श्रे अवतु।**

अर्थः— जो भगवान नमिनाथ स्वामी श्रीवा हैं। श्री शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। तथा वा शब्द वृ धातुसे बना है जिसका अर्थ स्वीकार करना है। जो अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मीको स्वयं स्वीकार करे उसको श्रीवा कहते हैं। भगवान नमिनाथको भी यह लक्ष्मी स्वयं प्राप्त हुई है इसलिये उनको श्रीवा कहते हैं। अथवा श्री लक्ष्मीको कहते हैं। ई का अर्थ निषेध है। जिससे श्री अर्थात् लक्ष्मीका ई अर्थात् निषेध हो ऐसे पापको श्री ई-श्री कहते हैं। वा का अर्थ आच्छादन करना है। जो पापोंको आच्छादन करें उनको श्रीवा कहते हैं। भगवान नमिनाथ भी सेवकोंके पापोंको नाश कर उन्हें सुख देते हैं इसलिये उनको श्रीवा कहते हैं। फिर जो भगवान पूज्य हैं पूजनीय हैं। अथवा पू का अर्थ पवित्र है और ज्या पृथिवीको कहते हैं। जिनके पुण्योदयसे यह ज्या अर्थात् पृथ्वी जन्मसे पन्द्रह महिने पहलेसे ही पू अर्थात् सुवर्णमयी पवित्र हो जाय उनको पूज्य कहते हैं। भगवान नमिनाथके जन्म कल्याणकसे पहले रत्नोंकी वर्षा हुई थी इसलिये उनको पूज्य कहते हैं। अथवा जिनके जन्म कल्याणकके समय यह ज्या अर्थात् पृथ्वी मेरुपर्वतपर किये हुए अभिषेकके जलसे पवित्र हो गई हो उनको पूज्य कहते हैं। जन्म कल्याणके समय इन्द्रोंने मेरुपर्वतपर जो भगवान् नमिनाथका अभिषेक किया था उससे यह समस्त पृथ्वी पवित्र होगई थी इसलिये भगवानको पूज्य कहते हैं। लिखा भी है। " नूनं नद्यस्तदाभूवन्नभिषे-काम्भसा विभोः " अर्थात् 'भगवानके अभिषेकके जलसे उस समय

मेरु पर्वतपर नदियां बह निकली थीं।" अथवा भगवान् नमिनाथने विहार कर इस समस्त ज्या अर्थात् पृथ्वीको पू अर्थात् पवित्र कर दिया इसलिये उनको पूज्य कहते हैं । फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। वृषका अर्थ श्रेष्ठ है। भ का कान्ति है। जो श्रेष्ठ कान्तिको धारण करें उनको वृषभ कहते हैं। जिन शब्दका अर्थ गणधर है और पति का अर्थ स्वामी है। जो श्रेष्ठ कान्तिको धारण करने वाले गणधरों के स्वामी हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। भगवान् नमिनाथ भी श्रेष्ठ कान्ति को धारण करनेवाले सुप्रभार्य आदि सत्रह गणधरोंके स्वामी हैं इसलिये उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान सन अर्थात् अतिशय श्रेष्ठ हैं। फि जो भगवान् श्रीद्रुमांको-थधर्मोहर्यंकपुष्पदन्तोनुनिपुव्रतजित हैं। श्रीद्रुमका अर्थ कल्पवृक्ष है। अंकका अर्थ गोद है। जिसकी गोदमें वा जिसमें कल्पवृक्ष हों ऐसे समवसरणको श्रीद्रुमांक कहते हैं। उ शब्दका अर्थ समुद्र है, थ शब्दका अर्थ अत्यंत गंभीर है, धर्म शब्दका अर्थ आचरण है। जो उ अर्थात् समुद्र के समान थ अर्थात् अत्यंत गंभीर धर्म अर्थात् आचरण हों, न्यायपूर्वक आचरण हों उनको उथधर्म कहते हैं। ऊह शब्दका अर्थ विचार है और री शब्दका अर्थ भ्रम है। जिनके न्यायपूर्वक आचरणोंके विचारमें भी भ्रम हो, जो भगवान् वीतराग सर्वज्ञके कहे हुए आचरणोंको भी ठीक न समझते हों अथवा अनंत धर्मात्मक पदार्थों के विचार करनेमें निपुण न हों ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंको उथधर्मोहरि कहते हैं। अं शब्दका अर्थ ज्ञान है। कः शब्दका अर्थ शब्द है। "कः काकशब्दयोः" अर्थात "क का अर्थ कौआ और शब्द है"। जो शब्द ज्ञानपूर्वक हो उसको अंकः कहते हैं। पुष्पत् शब्दका अर्थ विकसित होना है। अन्तशब्दका अर्थ जीवादिक पदार्थ है जो अपनी अपनी पर्यायोंके द्वारा सदा विकसित होते रहें ऐसे जीवादिक पदार्थोंको पुष्पदन्त कहते हैं। उ का अर्थ तर्क वितर्क करना है। तथा मुनि शब्दका अर्थ साधु है। जो अंकः अर्थात् ज्ञानपूर्वक निकले हुए

शब्दोंके द्वारा पुष्पदन्त अर्थात् अपनी गुणपर्यायों को प्राप्त होनेवाले जीवादिक पदार्थोंमें उ अर्थात तर्क वितर्क वा विचार करें ऐसे मुनियोंको अकः पुष्पदन्तोमुनि कहते हैं। मतिज्ञान श्रुत ज्ञान अवधिज्ञानको धारण करनेवाले मुनि ही अपने सम्यग्ज्ञानसे भरे हुए शब्दोंके द्वारा पदार्थोंका विचार करते हैं इसलिये ऐसे मुनियोंको अकः पुष्पदन्तोमुनि कहते हैं। सुव्रतशब्दका अर्थ घिरे रहना है और जिन शब्दका अर्थ गणधर है। जिनके श्रीद्रुमांक अर्थात् समवसरणमें जिन अर्थात गणधर देव उथधर्मोहरि अर्थात् वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनोंमें भी भ्रम करनेवाले अज्ञानी मिथ्यादृष्टी मुनि और अकःपुष्पदन्तोमुनि अर्थात् सम्यग्ज्ञान पूर्वक कहे हुए शब्दोंके द्वारा जीवादिक पदार्थोंमें विचार करनेवाले अवधि ज्ञानी मुनि इन दोनोंसे सुव्रत अर्थात् घिरे हुए हों उनको श्रीद्रुमांकोथधर्मोहर्यकःपुष्पदन्तोमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान नमि नाथके समवसरणमें भी गणधरदेव मुनि और मिथ्यादृष्टि मुनि सबके साथ विराजमान थे इसलिये उन भगवानको श्रीद्रुमांकोथधर्मोहर्यकःपुष्पदन्तोमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व हैं। अनन्त शब्दका अर्थ अनन्त चतुष्टय है। वाक् शब्दका अर्थ नाम है। तथा श्री शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। जिस श्री अर्थात् लक्ष्मीका वाक् अर्थात् नाम अनन्त चतुष्टय हो उसको अनन्तवाक्श्री कहते हैं। तथा श्री शब्दसे समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी भी लेलेनी चाहिये। सुपार्श्व शब्दका अर्थ समीप है। जिनके समीपमें अनंत चतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी और समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी हो उनको अनन्तवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् नमिनाथके समीपमें भी दोनों प्रकारकी लक्ष्मी शोभायमान थी इसलिये उनको अनंतवाक्श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् शांति हैं। जो हिंसादिक पापोंको शांत करें उनको शांति कहते हैं। भगवान् नमिनाथ भी पापोंको नाश करनेवाले हैं इसलिये वे शांति कहलाते हैं। लिखा भी है " अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम् " अर्थात ' अहिंसा धर्मको माननेवाले

ही परम ब्रह्मको प्राप्त होते हैं यह बात संसार भरमें प्रसिद्ध है '। फिर जो भगवान् पद्मप्रभ है। पद्का अर्थ प्राप्ति और मा का अर्थ लक्ष्मी है। जिसमें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं। जिनकी प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् नमिनाथके शरीर की प्रभा भी सुवर्णके समान थी इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। अका अर्थ नहीं है और रका अर्थ धन है। जिनके पास र अर्थात् धन, अ अर्थात् न हो उनको अर कहते हैं। भगवान नमिनाथ भी चौबीसो प्रकारके परिग्रहसे रहित निर्ग्रंथ हैं इसलिये उनको अर कहते हैं। फिर वे भगवान विमलविभु हैं। विमल निर्मलको कहते हैं और विभु स्वामीको कहते हैं। भगवान नमिनाथका आत्मा अत्यंत शुद्ध है और वे सबके स्वामी हैं इस-लिये विमलविभु कहलाते हैं। अथवा पुण्यकर्मके उदयसे होनेवाले चक्रवर्ती आदिके जो स्वामी हों उनको विमलविभु कहते हैं। भगवान नमिनाथ भी जयसेन चक्रवर्ती आदिके स्वामी हैं इसलिये उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान वर्द्धमान हैं। वर्द्धमान शब्दका अर्थ एरंड है। लिखा भी है "चञ्चुः पञ्चाङ्गुलमंड वर्द्धमानव्यडंबकाः" अर्थात् चंचु पंचांगुल अंड वर्द्धमान व्यडंबक ये सब एरंडके नाम हैं। एरंड वायुरोगको दूर करता है। भगवान नमिनाथ भी लोगोंके अनादि कालसे लगे हुये मिथ्यात्व रूपी वायुरोगको नाश करनेके लिये वर्द्धमान अर्थात् एरंडके समान हैं इसलिये उनको वर्द्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान अजांकोमलि हैं। अज ब्रह्माको कहते हैं और अंक आसनको कहते हैं। ब्रह्माके आसनको अजांक कहते हैं। ब्रह्माका आसन कमल है इसलिये कमलको अजांक कहते हैं। उ शब्दका अर्थ प्राप्ति है। अजांक अर्थात् कमलकी उ अर्थात् प्राप्ति वा रक्षाको अजांको कहते हैं। तथा मल धातुका अर्थ धारण करना है। जो कमलकी रक्षा वा प्राप्तिको मलि अर्थात् धारण करें उनको अजांकोमलि कहते हैं। भगवान नमिनाथ भी कमलका चिन्ह धारण करते हैं

इसलिये उनको अजाकोमलि कहते हैं। फिर जो भगवान नेमि हैं। न का अर्थ मनुष्य है। उसकी सप्तमीका ने बनता है। अका अर्थ नहीं है और मिका अर्थ हिंसा है। जिनके हिंसा न हो उनको अमि कहते हैं। जो ने अर्थात् मनुष्यों में किसी प्रकारकी हिंसा न करें उनको नेमि कहते हैं। नेमिका अर्थ दयालु है। और यह उपलक्षण है। वे भगवान एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक समस्त जीवोंपर दयालु हैं सबकी रक्षा करते हैं इसलिये नेमि हैं। यहांपर अलुक् समास है। सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं हुआ है। फिर जो भगवान सुमति हैं। सुका अर्थ पूज्य है और मतिका अर्थ ज्ञान है। जिनका ज्ञान पूज्य हो उनको सुमति कहते हैं। भगवान नमिनाथका केवल ज्ञान भी पूज्य है इसलिये उनको सुमति कहते हैं। ऐसे वे श्री नमिनाथ इक्कीसवें तीर्थंकर श्रे अर्थात कल्याण करनेके लिये मुझ जगन्नाथ पंडित की भी रक्षा करो। मां मका अर्थ पाप है और अं का अर्थ व्याधि है। आस का अर्थ दूर करना है। जिस प्रकार भगवानने पाप रूप व्याधि को दूर किया है। अथवा पापसे उत्पन्न हुई लोगोंकी व्याधियों को दूर किया है। य शब्दका अर्थ–याचक कुत्सित वा रोगी है। लिखा भी है " याचके योतिकुत्सने। यो जातरि रुजाल्पने " अर्थात् य शब्दका अर्थ याचक, कुत्सित, उत्पन्न होना और रोगी है। य शब्दका द्वितीया का बहुवचन यान् बनता है। जिसप्रकार भगवान नमिनाथने यान् अर्थात याचकोंकी रोगियोंकी वा कुत्सित अर्थात् अज्ञानियोंकी रक्षा की है उसी प्रकार श्रे अर्थात् पाप वा दुःखोंको नाश करनेवाले कल्याणके लिये इस स्तुतिके करनेवाले मुझ विद्वद्वर पंडित जगन्नाथकी भी रक्षा कीजिये।

इति श्री नमिनाथ स्तुति।

---

१ यहांपर उकार च्युत शब्द है। उकारको छोडकर अर्थ किया गया है।

अथ श्रीनेमिनाथस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाकोथधर्मो
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥

टीका—–असौ नेमिः अरिष्टनेमिनाथो द्वाविंशस्तीर्थकृत् नोपि अस्मानपि अवतु । अन्ये यथा रक्षितास्तथा मामपीत्यर्थः । बहुवचनस्य वस्नसाविति नसादेशः । कथंभूतान् नः अन्तः व्याधितान् दुःखपीडितानित्यर्थः । “ व्यसने व्याधिते व्याधौ ज्ञानविज्ञानवन्दने अंशब्दः ” । “ इतराभ्योपि दृश्यते ” इति तसिल द्वितीयाबहुवचने । अथवा असौ नेमिः नः अस्माकं अन्तः व्याधीन् नाशयतु । अथवासौ नेमिः नः अस्मभ्यं सुखं लक्ष्मीं वा करोतु । वा नेमिः नोस्मभ्यं अं ज्ञानं ददातु । अमिति पद्यान्तस्थं ग्राह्यम् । किंविशेषणगोचरः शान्तिः । शिशुत्वे नागशय्यारोहणशंखवादनधनुरारोपणादिभिः कृष्णमदं शान्तयति शान्तिः । एतेन किं जातमित्युच्यते । पुनः श्रीसुपार्श्वः महापराक्रमवादनोद्भूतशंखनिनदकोलाहलविभ्यत्त्रिलोकलोकलोकेशानां श्रियः सुपार्श्वे यस्य स श्रीसुपार्श्वः । कथं स्वामिन् त्वमेवास्माकं विभुर्नान्यः कृष्णादिरिति । एतेन अनन्तबलं सूचितं भवति स्वामिनः । पुनः श्रेयान् त्वमेव श्रेष्ठः । कथं ? चाणूरमल्लकंसादीन् हत्वा सर्वराज्ञो जित्वा नागशय्यादयो विष्णुना महाभटेनोपात्ताः । ततो विष्णुरनुपमत्वं गतः । अतो युष्माभिः तत्सर्वं क्षणार्द्धेनाक्रामितम् । ततस्त्वमेव श्रेष्ठः । पुनः विमलविभुः विमलानां त्रिजगत्पतीनां विभुः विमलविभुः । भूयः श्रीद्रुमांकोथधर्मः । अत्र व्याख्याने थकारे द्वित्वमपेक्ष्यम् । श्रिया उपश्लिष्टा द्रुमा रचिता नानाभूरुहाः श्रीद्रुमाः । ते अंके उभयपार्श्वे यस्य

स श्रीद्रुमांकः। विवाहार्थं रचिततोरणः। तस्मादुत्थः उत्पन्नः धर्मः दीक्षाभावो यस्य स श्रीद्रुमांकोत्थधर्मः । अथवा श्रीद्रुमांके राज्यलोलुपवासुदेवनिर्मापितवाटस्थनानाजीवराशिपूत्कृतिमाकर्ण्य उत्थः उत्पन्नः धर्मो दयालक्षणो यस्य स श्रीद्रुमांकोत्थधर्मः। त्वदर्थमेते सत्वा हन्यन्ते इति श्रुत्वा धिग्विवाहं धिग् राज्यं चेति मत्वा ऊर्जयन्तमाजगाम इति । पुनः अरः । नास्ति रा रमणी राजीमती यस्य सोरः। एतेन स्त्रीत्यागं कृत्वाददे दीक्षाम् । पुनः नमिः समुद्रविजयकृष्णोग्रसेनादीन् नामयति नमिः। स्वामिन् क्षमस्वापराधमिति ब्रुवाणाः। अथवा नमिरिव नमिस्तदनंतरत्वात् । पुनः अवृषभजिनपतिः । आय नारायणाय वृषभः श्रेष्ठः जिनः कामः इति अवृषभजिनः। वासुदेवप्रियाः कामक्रोधादयः। तस्य तेषां इति पतिः अवृषभजिनपतिः। एवं हि कामं जित्वा तत्पतिरजनिष्ट। अत्र निदर्शनं अन्योपि कश्चन बली राजा रिपुं विजित्य तत्पतिर्भवति। अन्यथा तदधीन एवेति समाधिः। यथा वासुदेवस्तदधीनो न तथा नेमिः । पुनः वा उपमार्थे । पद्मप्रभः नीलपद्माभः। अथवा पद्मस्य बलभद्रस्य प्रभा इव प्रभा यस्य स पद्मप्रभः । नीलवर्णैकदेशत्वात् । यथा पुरुषोयं सिंहः । उक्तं च " नीलजलदलराशिवपुरिति " । पुनः ऋद्धमा। ऋद्ध मोक्षमेव मन्यते सर्वं स्वकत्या इति ऋद्धमा । राजन्शब्दवत् । अथवा ऋद्धे पूर्वापरदोषरहिते मे प्रमाणे प्रत्यक्षपरोक्षे यस्य स ऋद्धमा। अथवा ऋद्धा मा केवलज्ञानं यस्य स ऋद्धमा सोमपावत् । केवलज्ञानविराजमानः । पुनः पुष्पद् । पुष्णाति सुखं भक्तानामिति पुष्। पुष् पद यस्य सोयं पुष्पद् सेवकसुखदवरचरणकमलः। पुनः श्रीवासुपूज्यः । श्रीवासुभिः पाकशासनैः पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । तदुक्तं त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरणविसरोपचुम्बितं पादयुगलममलमिति ।अथवा श्रीवासुपूज्यः श्रीवा आस पूज्यः यो नेमिः आस दिदीपे। अस दीप्त्यादानयोश्च। अथवा आसेति पूर्वं योज्यम्। यः नेमिररः सन् आस दीक्षां

जग्राह । अथवा यो नेमिः एवंविधः पूर्वोक्तविशेषणगोचरः आस बभूव । अस् भुवीत्यस्य लिटि रूपम् । किलक्षणः श्रीवा । श्रियं संसारलक्ष्मीं परित्यज्य मुक्ति वरत इति श्रीत्रा । पुनः पूज्यः । पूः पवित्रा ज्या पृथिवी यस्मादिति पूज्यः । अथवा पूजनीयः । पुनः हर्यंकः । हरौ हरिवंशे यादववंशे अंकश्चिन्हमिति हर्यंकः । तथाच " हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः " इति । पुनः अमुनिसुव्रतजिनः । न मुनयः अमुनयः अर्थतो बलवासुदेवादयस्तैः सुव्रता जिना वरदत्ताद्या एकादश गणधरा यस्य स अमुनिसुव्रतजिनः । एतेन गणेशिना सर्वेशा वासुदेवादीनां भवावलिर्गदिता कृष्णाष्टपट्टराज्ञीनां च । तन्महापुराणाद्बोद्धव्यम् । पुनः अनन्तवाक् अनन्ते नारायणे वाक् वचनं यस्य सोनन्तवाक् । एवं हि श्रीनेमिजिनान्नारायणेन सम्यक्त्वरत्नमुपात्तमिति । भूयः अजांकः । आत् नारायणाज्जाता अजाः प्रद्युम्नादयः पुत्रास्तेंऽके यस्य सोजांकः । त्रयः पुत्राः मुनयो भूत्वा तस्थुरिति पुराणम् । पुनः मल्लिः कर्मजये महामल्लः । अथवा मतः कृष्णमदस्य लिर्नाशो यस्मादिति मल्लिः तपोवस्थायां महासमवसरणस्थमानस्तंभप्राकारच्छत्रत्रयद्वादशगणादिलोकातिशायिशोभाभिः। एवमादिकं वासुदेवो दृष्ट्वा चिन्तां प्राप्तः । ईदृशी विभूतिः कुतोस्येति । पुनः मांसुमतिः । मश्चन्द्रस्तद्वत् अं ज्ञानं तेन सुअनुमता मतिर्यस्य स मांसुमतिः । पुनः सन् जरामरणरहितः । अष्टकर्मविमुक्तो बभूवेत्यर्थः । पुनः श्रीजगन्नाथधीः । श्रीजगन्नाथैर्बलकृष्णादिभिः इन्द्रादिभिर्वा ध्यायते चिन्त्यत इति श्रीजगन्नाथधीः । भगवद्गुणा नोपि भवन्त्विति । अथवा श्रीजगन्नाथेन जगन्नाथनाम्ना पण्डितेन ध्यायते चिन्त्यत इति श्रीजगन्नाथधीः : मयापि नेमिस्मरणमेवाहर्दिवं चेक्रीयते ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्तिमुख्यशिष्यकविराजजगन्नाथकृतायां द्वाविंशतीर्थंकरश्रीनेमिनाथस्तुतिः पूर्णा ।

अब आगे बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—शांतिः श्रीसुपार्श्वः श्रेयान् विमलविभुः श्रीद्रुमांकोथधर्मः अरः नमिः अवृषभजिनपतिः वा पद्मप्रभः ऋद्धमा पुष्पदृ श्रीवासुपूज्यः (श्रीवा आस पूज्यः) हर्यंकः अमुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् अजांकः मल्लिः मांसुमतिः सन् श्रीजगन्नाथधीः असौ नेमिः अन्तः नः अपि अवतु।

अर्थ—जो भगवान् नेमिनाथ स्वामी शांति हैं। जो शांत करें उनको शांति कहते हैं। भगवान् नेमिनाथने भी बालकपनमें कृष्णकी नागशय्या पर चढकर, शंख बजाकर तथा धनुष चढाकर कृष्णका मद शांत किया था इसलिये उनको शांति कहते हैं। इससे क्या हुआ यह बात आगे दिखलाते हैं। फिर वे भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जिनके समीपमें लक्ष्मी हो उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् नेमिनाथने जो अपने महापराक्रमसे शंखध्वनि की थी और उससे जो कोलाहल हुआ था उससे तीनों लोकोंके राजा डर गये थे और उनकी सब शोभा भगवान्के समीप ही आगई थी। सब यही कहते थे कि हे भगवन् हमारे स्वामी आप ही हैं, अन्य कृष्ण आदि नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि भगवान् नेमिनाथ स्वामी अनंत बल शाली हैं इसलिये उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान श्रेयान् हैं सबसे श्रेष्ठ हैं। क्योंकि कृष्ण महायोद्धा थे। उन्होंने चाणूरमल्ल और कंस आदिको मारकर तथा सब राजाओं को जीतकर नागशय्या आदि प्राप्त की थी इसलिये संसारमें कृष्णकी उपमा के योग्य कोई नहीं रहा था। कृष्ण सर्वश्रेष्ठ कहलाये थे। परंतु हे भगवन् आपने आधे क्षणमें ही उस नागशय्या आदि सब विभूतिपर अधिकार जमालिया था इसलिये सब लोग आपको ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। फिर जो भगवान् विमलविभु हैं। जो पाप रहित हों ऐसे इंद्रादिकोंके भगवान नेमिनाथ स्वामी हैं इसलिये उनको विमलविभु कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीद्रुमांकोथधर्म हैं। व्याख्या करते समय थ को द्वित्व समझना चाहिये। जिनकी रचना बडी शोभाके साथ की गई है ऐसे

वृक्षोंको श्रीद्रुम कहते हैं। जिनके समीपमें अर्थात् दोनों ओर बहुत सुशोभित और बनाये हुए वृक्ष हों ऐसे विवाहके लिये बनाये हुए तोरणको श्रीद्रुमांक कहते हैं। धर्म शब्दका अर्थ वैराग्य वा दीक्षा धारण करना है। जिनको तोरणसे ही वैराग्य उत्पन्न होगया हो उनको श्रीद्रुमांकोत्थधर्म कहते हैं। अथवा जिसपर सुंदर वृक्ष हों ऐसे ऊर्जयंत (गिरनार) पर्वतके सहस्रार वनको श्रीद्रुमांक कहते हैं। भगवान् नेमिनाथके विवाह के समय राज्यके लोलुपी श्रीकृष्णने अपने निश्चित किये हुए मार्गमें अनेक पशु इकट्ठे करलिये थे उनके चिल्लानेकी आवाजको सुनकर ही भगवान्को दयाधर्म उत्पन्न हुआ था। फिर जो भगवान् अर हैं। र का अर्थ स्त्री है। जिनके स्त्री न हो उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। जो दूसरोंसे नमस्कार करावें उनको नमि कहते हैं। भगवान् नेमिनाथको भी राजा समुद्रविजय कृष्ण उग्रसेन आदि सब नमस्कार करते थे और सब कहते थे कि हे स्वामिन् अब हमारा अपराध क्षमा कीजिये। इसलिये उनको नमि कहते हैं। अथवा जो नमिके समान हों उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् अवृषभजिनपति हैं। अशब्दका अर्थ नारायण है। वृषभ शब्दका अर्थ श्रेष्ठ है और जिनका काम है। जो अ अर्थात् नारायणके लिये वृषभ अर्थात् श्रेष्ठ हो ऐसे जिन अर्थात् काम क्रोधादिकको अवृषभजिन कहते हैं। जो उनके आधीन न हो-उन्हे जीतकर उनके पति अर्थात् स्वामी बने हों उनको अवृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् वापद्मप्रभ हैं। यहांपर वा शब्द उपमामें आया है। पद्म नील कमलको कहते हैं। जिनकी प्रभा नील कमलके समान हो उनको वापद्मप्रभ कहते हैं। अथवा पद्म शब्दका अर्थ कृष्णके भाई बलदेव है। जिनकी प्रभा बलदेवके समान नील वर्ण हो उनको वापद्मप्रभ कहते हैं। जिस प्रकार यह पुरुष सिंहके समान है यहांपर सिंहका एकदेश प्रताप पुरुषमें लेते हैं उसी प्रकार नील वर्ण कहनेसे एकदेश नील वर्ण समझना चाहिये। फिर जो भगवान् ऋद्धमा हैं। ऋद्ध शब्दका अर्थ मोक्ष है

और नशब्दका अर्थ मानना है। जो सबको छोडकर मोक्षको ही मानें उनको ऋद्धमा कहते हैं। अथवा ऋद्धका अर्थ पूर्वापर दोष रहित है। और न का अर्थ प्रमाण है। जिनके प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रमाण पूर्वापर दोष रहित हों उनको ऋद्धमा कहते हैं। अथवा ऋद्ध शब्दका अर्थ सहित है और मका अर्थ केवलज्ञान है जो केवलज्ञान सहित हों उनको ऋद्धमा कहते हैं। भगवान् नेमिनाथ भी केवलज्ञान सहित विराजमान हैं। फिर जो भगवान् पुष्पद् हैं। जो भक्तोंको सुखकी पुष्टि करें उनको पुष् कहते हैं। जिनके चरण कमल भक्तोंको सुख देनेवाले हों उनको पुष्पद् कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्रीवासु इन्द्रको कहते हैं। इन्द्रोंके द्वारा जो पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। अथवा इस शब्दको उकारच्युत मानकर श्रीवा आस पूज्य ऐसे तीन पदच्छेद करने चाहिये। और उनके अर्थ इस प्रकार करने चाहिये। जो भगवान् श्रीवा हैं। श्रीका अर्थ मोक्षलक्ष्मी है और वा का अर्थ वरण करना वा स्वीकार करना है जो संसार की लक्ष्मी का त्याग कर मोक्ष लक्ष्मी को स्वीकार करें उनको श्रीवा कहते हैं। तथा वे पूज्य हैं। ऐसे वे श्री नेमिनाथ भगवान् आस अर्थात् हुए थे। आस धातुका अर्थ होना है। अथवा देदीप्यमान अर्थको कहनेवाली अस् धातु से आस बनाना चाहिये। और फिर ऐसा अर्थ करना चाहिये कि ऐसे वे श्री नेमिनाथ भगवान देदिप्यमान हो रहे थे। अथवा आस धातुका अर्थ ग्रहण करना भी है। भगवान् नेमिनाथने स्त्रीका त्याग कर आस अर्थात् दीक्षा ग्रहण की थी। फिर जो भगवान् हर्यंक हैं। जो हरिवंशमें चिन्हके समान प्रसिद्ध हों उनको हर्यंक कहते हैं। फिर वे भगवान् अमुनिसुव्रतजिन हैं। जो मुनि न हों उनको अमुनि कहते हैं। प्रकरण वशसे अमुनि शब्दसे बलदेव कृष्ण लेने चाहिये। सुव्रतका अर्थ घिरे रहना है। जिनके गणधर कृष्ण बलदेव के साथ विराजमान हों उनको अमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान् नेमिनाथ के समवसरणमें वरदत्त आदि ग्यारह गणधर कृष्ण बलदेव

के साथ विराजमान थे इसलिए भगवानको अमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। अनन्त शब्दका अर्थ नारायण है। वाक् का अर्थ वचन है। जिनके वचन नारायणके लिए हों उनको अनन्तवाक् कहते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि कृष्णने भगवान् नेमिनाथसे ही सम्यक्त्वरूपी रत्न प्राप्त किया था इसलिए उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् अजांक हैं। अ शब्दका अर्थ नारायण है। जो नारायणसे उत्पन्न हों ऐसे प्रद्युम्न आदि नारायणके पुत्रोंको अज कहते हैं। वे जिनके समीपमें हों उनको अजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् मल्ल हैं। कर्मोंको जीतनेके लिए महामल्ल हैं। अथवा जिनसे मदका नाश हो उनको मल्लि कहते हैं। भगवान् नेमिनाथने बालक अवस्थामें शंखध्वनि कर कृष्णका मद नाश किया था तथा निर्ग्रंथ अवस्थामें मानस्तंभ, कोट, तीन छत्र बारह सभा स्तूप आदि समवसरणकी लोकोत्तर विभूति के द्वारा कृष्णका मद चूर किया था। समवसरण की विभूति को देखकर कृष्णको भी यह चिंता होगई थी कि यह ऐसी विभूति इनको कैसे प्राप्त होगई। फिर जो भगवान् मांसुमति हैं। जिनका मति अर्थात ज्ञान म अर्थात् चन्द्रमाके समान निर्मल अं अर्थात् ज्ञानके द्वारा सु अर्थात मान्य हो उनको मांसुमति कहते हैं। फिर जो भगवान् सन् हैं जन्म मरण रहित अथवा आठों कर्मोंसे रहित सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर जो भगवान् श्रीजगन्नाथधी हैं। अनेक प्रकारकी लक्ष्मी से सुशोभित ऐसे जगतके नाथ इन्द्रादिकोंके द्वारा अथवा कृष्ण बलदेव आदिके द्वारा जो चिंतन किये जांय उनको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं सब भगवान नेमिनाथका ध्यान करते हैं अथवा इस ग्रंथके बनानेवाले विद्वद्वर पंडित जगन्नाथके द्वारा जो ध्यान किये जांय उनको श्रीजगन्नाथधी कहते हैं। ऐसे ये श्री अरिष्ट नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर अं अर्थात् अनेक व्याधियोंसे दुखी हुए हम लोगोंकी भी रक्षा करो। हे भगवन् ! जिस प्रकार आपने अन्य जीवोंकी रक्षा की है उसी प्रकार हम लोगों की भी

रक्षा कीजिये। नः इसको द्वितीया न मान कर षष्ठी मानना चाहिये। और अव धातुका अर्थ नाश मानना चाहिये। फिर ऐसा अर्थ करना चाहिये कि वे भगवान् नेमिनाथ स्वामी हम लोगोंके अन्त अर्थात् दुःखोंको नाश करो। अथवा नः को चतुर्थी विभक्ति मानना चाहिये। अं शब्दका अर्थ सुख वा लक्ष्मी लेना चाहिये और अव धातुका अर्थ उत्पन्न करना चाहिये। फिर ऐसा अर्थ करना चहिये कि वे श्रीनेमिनाथ स्वामी हम लोगोंके लिये सुख वा लक्ष्मी उत्पन्न करें।

इति श्रीनेमिनाथ स्तुति ॥

—०—

अथ पार्श्वनाथस्तुतिः।

श्रेयान्श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्।

टीका—अथ श्रीनेमिनाथस्तुतेरनन्तरम्। हर्यंकः हरिः सर्पः अर्थाद्धरणेन्द्रः अंके यस्य स हर्यंकः श्रीपार्श्वनाथदेवः। अथवा श्रीसुपार्श्वः श्रिया समवसरणादिना शोभनश्चासौ पार्श्वः पार्श्वनाथ इति श्रीसुपार्श्वः। एतद्विशेष्यं हर्यंक इति विशेषणम्। अथवा हर्यंक इति विशेष्यं श्रीसुपार्श्व इति विशेषणम्। तदा इत्थमर्थः। किलक्षणो हर्यंकः श्रीसुपार्श्वः। श्रीसुपार्श्व इव श्रीसुपार्श्वः। सुपार्श्वसदृश इत्यथः। हरिद्वर्णत्वात्। स श्रीसुपार्श्वनाथः त्रयोविंशजिनः परिवृढः मामपि जगन्नाथनामानमपि अवतु रक्षतु किलक्षणः सन्। सन् साधुः। सन् मयि जगन्नाथनाम्नि पण्डितं। किलक्षणं मां थधीरम्। थधिया अतिगम्भीरबुध्या श्रीपार्श्वनाथं रवीति स्तवीतीति थधीरस्तं थधीरम्। स्वदेकतानम्।

अथवा थं स्तोकार्थे नपुंसकम् । थधिया स्तोकबुद्ध्या रवीति थधीरस्तं स्तोकधियम् । "शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः" इति । अथवा किंलक्षणं अथधीरम् । नास्ति थो मिथ्यावाचको रवो यस्यां सा अथा । एवंविधा धीर्बुद्धिरित्यथधीः । तया रौति जिनमिति अथधीर-स्तमथधीरम् । सुदृष्टिमित्यर्थः । वा अथे सत्यवाचके जैनमते धीरं पण्डितम् । अथ किंलक्षणः श्रीपार्श्वनाथः ? श्रीजगन्ना । श्रीजगतां त्रिलोकानां ना नाथ इति श्रीजगन्ना । त्रिजगत्पतिरित्यर्थः । अत्र नृशब्दः ऋकारान्तः । वचनं हि "नृश-ब्दोऽपि नरे नाथे" ना नरौ नरः इत्यादि । पुनः सुमतिः सुमस्य महामायाविनः कमठस्य तिः तिरस्कारो यस्मादिति सुमतिः । तिरिति नामैकदेशो नाम्नि । "मायाविनि वृथामन्त्रे मः" । पुनः कोमल्लिः । का अग्नयः पवना वा । उशब्देन जलानि । ते विद्यन्ते यस्य स कोमान् । प्रकीर्णकवलाहकाद्युपद्रवः कमठः । तस्य लिर्नाशो यस्मादिति कोमल्लिः । वचनं हि "तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः । बलाहकैर्वैरिवशै-रुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः" इति । अन्यच्च "क-मठस्य धूमकेतोरिति" । एवं चेत्तर्हि शत्रून् घातुकस्तर्हि भावकर्म-वशीति चेन्न । कथम् ? पुनः नमिः नास्ति मीर्हिंसा यस्य सोऽयं नमिः । दयालुः । शत्रुमित्रसमानः । यद्यं हि— "उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम् ।" इति । पुनः नेमिः नेमिरिव नेमिः । तदनन्तरत्वात् । अन्यदुपमानं नास्ति अतो नेमेरेवोपमा । पुनः श्रीवासुपूज्यः श्रिया पद्मावत्या सहितः वासुः वासुकिः धरणेन्द्रस्तेन पूज्यः श्रीवासुपूज्यः । नामैकदेशो नाम्नि वासुरिति वासुकिः । यद्यंच "बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम् । जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदंबुदो यथा" इति । अन्यत्रापि "पार्श्वं

नागेन्द्रपूजितः "। पुनः श्रेयान् इन्द्रादिभिरपि पूज्यः। एतेन केवलावगमः। पुनः वृषभजिनपतिः। वृषभा धर्मभारवहने वृषभा इव वृषभाः धर्मधुरंधरीणास्तेच ते जिनाः स्वयंभूमुख्या दश गणधरास्तेषां पतिः वृषभजिनपतिः। पुनः श्रीत् द्वादशगणे श्रियं श्रयति श्रीत्। मुहु रुमांकः। " मेरौ परिभ्रमे भानौ रुः पुंसि रसने स्त्रियाम् "। रुः परिभ्रमः अर्थवशात् संसारभ्रमणं तस्य मः मारणं निवारणं अंके सविधे यस्य स रुमांकः पुनः धर्मः धर्मवान्। पुनः पुष्पदन्तः कंदर्पहन्ता। अष्टादशसहस्र-शीलधारी। पुनः अरः नास्ति रा रमणी यस्य सोरः। अपरिणीत-त्वात्। पुनः मुनिसुव्रतजिनः। मुनिभिः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययबो-धवद्भिः सुव्रतः मुनिसुव्रतः स चासौ जिनश्च मुनिसुव्रतजिनः। अथवा मुनिषु सुव्रतं स्वाचरणं यस्मादिति मुनिसु्व्रतः सचासौ जिनश्च मुनिसुव्रतजिनः। पुनः अनन्तवाक् अनन्तसरस्वतीकः। " गीर्वाग्वाणी सरस्वती "। अथवा अनन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ। अन-न्तात शेषाद्धरणेन्द्रात् वायोर्झंझावातस्य अक् निवारणं यस्य सो-नन्तवाक्। " झंझावाते तथा मंत्रे सर्वमन्त्रे मृतात्मकः "। " वृष्ट्या कुलश्चंडस्तु झंझावातः "। पुनः शान्तिः शः सदानन्दः शास्तपस्वि-नः शा श्रीवासे धनं वा अन्तौ अन्तिके यस्य यस्माद्वा जनाना-मिति शान्तिः। उक्तं च " तपोधनास्तेपि तथा मुमुक्षवः "। भूयः पद्मप्रभः। पद्मैः सुरनिर्मितकनककमलैः प्रभाति शोभते इति पद्मप्रभः। पुनः विमलविभुः। विमलानां ब्रह्मचक्रदत्तपत्यादीनां विभुः विमलविभुः। अथवा विया कान्त्या युता भाः सूर्यादयः ला इन्द्रास्तेषां विभुः विमलविभुः। " वी गतार्थे विशेषार्थे विनिपा-तितरवादने जनने प्रजनने कान्तौ तद्रूपं वीः श्रियं वियः। पुनः असोवर्द्धमानः असो वा ऋद्धमानः। वा उत्प्रेक्षार्थे। जनानां असौ प्राणे ऋद्धमान इव परिपूर्णचन्द्रबिम्बानन इव। आल्हादक-त्वात्। आन इति नामैकदेशो नाम्नीति। असो इति जात्येकव-

चनं असुषु इत्यर्थः । "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्या-मिति सूत्रेण" । उक्तं च द्विसन्धानकृता । अनेकवन्धानि विभाव-साविवेति" । पुः अजां अजेषु मुनिषु अं ज्ञानं यस्य सोजाम् ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतानेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारक श्री नरेंद्रकीर्ति मुख्य शिष्य सत्कवि पण्डित जगन्नाथनिर्मितायां त्रयोविंशजिनस्य श्रीपार्श्वनाथस्य स्तोत्रं समाप्तिमगमत् ।

आगे तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथकी स्तुति करते हैं ।

अन्वयः—अथ श्रीजगन्ना सुमतिः कोमछ्रिः नमिः नेमिः श्री वासुपूज्यः श्रेयान् वृषभजिनपतिः शीत् रुमांकः धर्मः पुष्पदन्तः अरः मुनिसुव्रतजिनः अनन्तवाक् शांतिः पद्मप्रभः विमलविभुः असौवर्द्ध-मानः अजां श्रीसुपार्श्वः सन् हर्यंकः थधीरं अपि अवतु । अथवा सन् हर्यंकः श्रीसुपार्श्वः थधीरं मां अवतु ।

अर्थ—जो भगवान् श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामी श्रीजगन्ना हैं । ना नाथ वा स्वामीको कहते हैं । जो तीनों लोकोंके स्वामी हों उनको श्रीजगन्ना कहते हैं । फिर जो भगवान सुमति हैं । सु का अर्थ अत्यंत है, म का अर्थ मायाचारी है । जो सुम अर्थात महामायाचारीका ति अर्थात् तिरस्कार करें उनको सुमति कहते हैं । महामायाचारी कमठ था और भगवान् पा-र्श्वनाथने उसका तिरस्कार किया था इसलिये भगवान्‌को सुमति कहते हैं । फिर जो भगवान कोमछ्रि हैं । क शब्दका अर्थ अग्नि वा पवन है । उ शब्दका अर्थ जल है । जिसमें अग्नि पवन जल तीनों हों उसको कोमत् कहते हैं । कमठके जीवने अग्नि पवन और जलकी वर्षा कर भगवान् पार्श्वनाथपर उपद्रव किया था इसलिये कोमत् शब्दका अर्थ कमठका किया हुआ उपद्रव लेना चाहिये । जिनसे कमठके जीवके द्वारा किये हुए उपद्रवोंका नाश हो उनको कोमछि कहते हैं । कोई यह कहेगा कि वे भगवान् शत्रुओंको घात करनेवाले हैं इसलिये वे रागद्वेष आदि भावकर्मोंके वशीभूत हैं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि

यह बात नहीं है। क्योंकि वे भगवान् नमि हैं। जिनके हिंसा न हो उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जो भगवान् नेमिनाथके समान हों उनको नेमि कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी नेमिनाथके अनंतर हुए हैं इसलिये वे उन्हींके समान हैं। फिर जो भगवान् श्रीवासुपूज्य हैं। श्री शब्दका अर्थ पद्मावती है। तथा वासु शब्दसे वासुकि लेते हैं। नामके एक देशसे भी वह पूरा नाम लिया जाता है। वासुकि शब्दका अर्थ धरणेंद्र है। जो पद्मावती सहित धरणेंद्र के द्वारा पूज्य हों उनको श्रीवासुपूज्य कहते हैं। लिखा है " पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः " अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी नागेन्द्र वा धरणेन्द्र के द्वारा पूज्य हैं "। फिर जो भगवान् श्रेयान् हैं। इंद्रादिकोंके द्वारा पूज्य हैं। फिर जो भगवान् वृषभजिनपति हैं। जो धर्मके भारको धारण करनेके लिये वृषभ वा बैलके समान हों, धर्मके धुरंधर हों उनको वृषभ कहते हैं। जो धर्मके धुरंधर गणधरोंके पति हों उनको वृषभजिनपति कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी भी स्वयंभू आदि धर्मके धुरंधर दश गणधरों के स्वामी हैं इसलिये उनको वृषभजिनपति कहते हैं। फिर जो भगवान् श्रीत् हैं। समवसरणकी बारह सभाको श्री कहते हैं। ई धातु का अर्थ प्राप्त होना है। जो समवसरणकी बारह सभाओंको प्राप्त हो उनको श्रीत् कहते हैं। भगवान् भी बारह सभाओंके नायक हैं इसलिये उनको श्रीत् कहते हैं। फिर जो भगवान् रुमांक हैं। रु शब्दका अर्थ परिभ्रमण है। म का अर्थ मारना अथवा निवारण करना है। जिनके समीपमें संसारपरिभ्रमणका नाश हो जाय उनको रुमांक कहते हैं। फिर जो भगवान् धर्म हैं। अर्थात् धर्मको धारण करनेवाले हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जो स्त्रियोंमें विकसित हो ऐसे कामदेवको पुष्पत् कहते हैं और उसका अन्त अर्थात् नाश करनेवालोंको पुष्पदन्त कहते हैं। भगवान्ने भी कामदेवका नाश किया है और वे शीलव्रतके अठारह हजार भेदोंको पालन करनेवाले हैं इसलिये उनको पुष्पदन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। जिनके स्त्री न हो उ-

नको अर कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथने भी अपना विवाह नहीं कराया था इसलिये उनको अर कहते हैं। फिर जो भगवान् मुनिसुव्रत जिन हैं। जो तीर्थंकर परमदेव चारों ज्ञानोंको धारण करनेवाले मुनियोंसे घिरे हों उनके साथ विराजमान हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। अथवा जिन तीर्थंकर परमदेवसे मुनियोंमें भी सुव्रत अर्थात् अच्छे पवित्र व्रत वा आचरण हों उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान् भी मुनियोंके साथ विराजमान रहते हैं अथवा उनके निमित्तसे ही मुनियोंका आचरण उत्तम रहता है इसलिये उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। फिर जो भगवान् अनन्तवाक् हैं। जिनकी सरस्वती अनन्त हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। अथवा अनन्त शब्दका अर्थ शेषनाग है। वा का अर्थ झंझावायु है। तथा अक् शब्दका अर्थ निवारण करना है। अनंत अर्थात धरणेन्द्रके द्वारा जिनकी वा अर्थात झंझावायु अक् अर्थात निवारण की गई हो उनको अनन्तवाक् कहते हैं। भगवान्‌पर किया हुआ ऐसा उपद्रव भी धरणेन्द्रके द्वारा निवारण हुआ था इसलिये उनको अनन्तवाक् कहते हैं। फिर जो भगवान् शान्ति हैं। श का अर्थ सदानंद है। अथवा श का अर्थ तपस्वी है। अथवा श का अर्थ लक्ष्मीका निवासस्थान धन है। अन्ति शब्दका अर्थ समीप है। जिनके समीपमें सदानंद वा अनंत सुख हो अथवा जिनके समीपमें तपस्वी निर्ग्रंथ मुनि हों उनको शान्ति कहते हैं अथवा जिनके संबंधसे धनकी प्राप्ति हो उनको शान्ति कहते हैं। फिर जो भगवान पद्मप्रभ हैं। विहार करते समय जो देव लोग भगवान्‌के चरणकमलोंके नीचे सुवर्णमय कमलोंको रचते हैं उन्हे पद्म कहते हैं। भगवान् उन कमलोंसे अत्यंत सुशोभित होते थे इसलिये उन्हे पद्मप्रभ कहते हैं। फिर जो भगवान विमलविभु हैं। भगवान् पार्श्वनाथके समयमें ब्रह्म चक्रवर्ती आदि महापुरुष जो पुण्य कर्मके उदयसे हुए हैं उनको विमल कहते हैं। भगवान् उनके स्वामी हैं इसलिये उनको विमलविभु कहते हैं। अथवा वि शब्दका अर्थ कान्ति है, म शब्दका अर्थ सूर्य है और ल शब्दका अर्थ इन्द्र है। वि

अर्थात् कान्तिसे सुशोभित होनेवाले म अर्थात् सूर्यादिक और क अर्थात इन्द्रादिकों को विमल कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ उन सबके स्वामी हैं इसलिये वे विमलविभु कहलाते हैं फिर जो भगवान् असौ-वर्द्धमान हैं। इसमें असौ वा ऋद्धमान ऐसे तीन पदच्छेद करने चाहिये। असु शब्दका अर्थ प्राण है। असु शब्दका सप्तमी का एक वचन असौ बनता है। यह एकवचन जातिमें है। जो एकवचन जातिमें होता है वह बहुवचनमें भी माना जाता है। अतः असौ शब्दका अर्थ 'प्राणोंमें' ऐसा बहुवचन लेना चाहिये। वा शब्द उत्प्रेक्षा अर्थमें आया है। ऋद्ध शब्दका अर्थ चन्द्रबिंब है तथा आन शब्दसे आनन लेना चाहिये। आनन शब्दका अर्थ मुख है। जिनका आन अर्थात् मुख प्राणों वा प्राणियों के लिये ऋद्ध अर्थात् पूर्ण चंद्र मंडलके वा अर्थात् समान हो उनको असौवर्धमान कहते हैं। फिर जो भगवान् अजाम् हैं। अज शब्दका अर्थ जन्ममरणसे रहित मुनि है और अं शब्दका अर्थ ज्ञान है। जिनका निर्मल ज्ञान जन्ममरणसे रहित होनेवाले मुनियोंमें हो उनको अजां कहते हैं। भगवान पार्श्वनाथका ज्ञान भी ऐसे ही मुनियोंमें होता है इसलिए उन भगवानको अजाम् कहते हैं। फिर जो भगवान् सन् अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। तथा जो भगवान् श्रीसुपार्श्व हैं। जो श्रीसुपार्श्वनाथके समान हों उनको श्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथके शरीरकी कांति भी श्रीसुपार्श्वनाथके समान हरित वर्ण है इसलिए उनके समान होनेसे पार्श्वनाथको भी श्रीसुपार्श्व कहते हैं। ऐसे वे हर्यंक–हरि सर्पको कहते हैं और अंक चिन्हको कहते हैं – जिनके चरणकमलमें सर्पका चिन्ह हो उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथके चरणकमलोंमें सर्पका चिन्ह है इसलिए उनको हर्यंक कहते हैं। ऐसे वे हर्यंक अर्थात् तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी मुझ जगन्नाथ पंडितकी भी रक्षा कीजिए। अथवा जो भगवान् हर्यंक हैं – सर्पके चिन्हको धारण करनेवाले हैं ऐसे वे श्रीसुपार्श्व, जो श्री अर्थात् समवसरणकी लक्ष्मीसे सु अर्थात् शोभायमान हैं ऐसे पार्श्व

अर्थात् पार्श्वनाथ स्वामी मुझ जगन्नाथकी रक्षा कीजिये। मैं कैसा हूं? थधीर हूं। जो थ अर्थात् अत्यंत गंभीर धी अर्थात बुद्धिसे श्रीपार्श्वनाथकी र अर्थात् स्तुति करे—जो सदा आपकी ही भक्तिमें लगा रहे उसको थधीर कहते हैं। अथवा थ का अर्थ थोडा है। जो थोडी बुद्धिसे स्तुति करे उसको थधीर कहते हैं। मैं भी बुद्धिहीन होकर भी भगवान्‌की स्तुति करता हूं इसलिये मैं थधीर हूं। अथवा जो थ अर्थात् मिथ्या न हो उसको अथ कहते हैं। जो मिथ्या न हो सम्यक् हो ऐसी धी अर्थात् बुद्धिको अथधी कहते हैं। जो ऐसी सम्यग्दर्शनपूर्वक बुद्धिके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करे अथवा उपदेश दे उसको अथधीर कहते हैं। अथवा जो मिथ्या न हो, सत्य वा यथार्थरूप हो ऐसे जैनधर्मको अथ कहते हैं। और धीर शब्दका अर्थ विद्वान् वा पंडित है। जो जैनधर्ममें धुरंधर विद्वान हो उसको अथधीर कहते हैं। हे भगवन् पार्श्वनाथ स्वामी! मैं भी एक जैनधर्मका धीरवीर पंडित हूं इसलिये आप मेरी भी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार भट्टारक श्रीनरेन्द्रकीर्तिके मुख्य शिष्य कविराज पंडित जगन्नाथविरचित एकाक्षर प्रकाशिका नामकी श्री चौवीसो तीर्थंकर की स्तुतिमें चावली [आगरा] निवासी लालाराम शास्त्री द्वारा विरचित भाषा टीका में तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ की स्तुति समाप्त हुई।

तथा

काव्यका तेईसवां अर्थ समाप्त हुआ।

—०—

अथ श्रीवर्द्धमानस्तुतिः ।

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो
हर्यंकः पुष्पदंतोमुनिसुव्रतजिनोनंतवाक्श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरोविमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको—
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥

टीका— अधिकारार्थो अन्त्यमंगलार्थो वा " आदिमध्यावसानेषु मंगलं भाषितं बुधैः " । भो श्री जगन्न ! जगतां नः नाथः जगन्नः । श्रियोपलक्षितो जगन्नः श्रीजगन्नस्तत्सम्बुद्धौ भो श्रीजगन्न । श्री जगदीश्वर ! ' नो नाथेपि प्रदर्श्यते ' । हे श्रेय आश्रयणीय ! भो अन् पालक ! भो श्रीव श्रीर्लक्ष्मीस्तस्या वः वरः श्रीवः । तत्सम्बुद्धौ हे श्रीव लक्ष्मीपते ! उ अहो हे वृषभ ! वृषा श्रेष्ठा भा कान्तिर्यस्य स वृषभस्तत्सम्बुद्धौ उत्कृष्टदीप्ते । भो श्रीद्रुम ! जनानां मनोभीष्टदानाय कल्पवृक्षसमान ! हे अंक ! अं ब्रह्मज्ञानं कायति वक्ति अंकः । तत्सम्बुद्धौ भो ब्रह्मकथक ! उ अहो हे उथधर्म्म । समुद्रवदतिनिम्नस्वभाव ! भो मुनिसुवृतजिन ! मुनिभिः सुवृता जिना यस्य स मुनिसुवृतजिनस्तत्सम्बुद्धौ । अथवा अमुनिसुव्रतजिन ! नास्ति मुर्बन्धनं कर्मपाशो यस्य सोमुः भावितीर्थंकरत्वात्कर्मबन्धरहितः श्रीश्रेणिकराजः । तेन नि भृशं कौशल्येन वा सुव्रता जिना यस्य सोमुनिसुव्रतजिनः । तत्सम्बुद्धौ । सर्वपुराणकथानायकः श्रेणिकः । हे पद्मप्रभ ! सुवर्णवर्ण ! हे उरोविमल ! उरसा हृदयेन विमल । उक्तं हि " त्वं जिनगतमदमाय " इति । एवंविशेषणविशिष्ट भो वर्द्धमान श्रीवीरनाथ चतुर्विंशजिन । अन्तिमतीर्थंकर ! त्वमास विराजताम् । जय । अस दीप्त्यादानयोश्चेति धातुः । लोटि मध्यमपुरुषे शपि कृते अतो हेरिति सिद्धम् । कथं उ वितर्के चकारार्थे वा । च पुनः तव सुमतिः आस तव शोभना मतिर्लोके बभूव । अथवा

तव सुमतिः पापं आस क्षेपयामास । असु क्षेपणे इत्यस्य लिटो णलि कृते रूपम् । अथवा तव सुमतिः । आस दिदीपे अतएव तव द्वितीयं नाम सन्मतिरिति । यथा तव मतिरित्थंप्रकारा बभूव तथा मां जगन्नाथनामानं ऊनं नृमात्रं अवतु । संसारात्पापात् अथवा तु पुनः हे वर्द्धमान । त्वं मां अव रक्ष । किंलक्षणं मां धीरं त्वयि विषये धियं मतिमीरयति क्षिपति स्थापयतीति यावत् धीरस्तं धीरम् । अथवा धिया सुधावाद्धारया इरा यस्य स धीरस्तम् । क्षीरसमुद्रवदुज्ज्वलजलेन पूजकः । उक्तं च "व्योमापगाद्युत्तमतीर्थवाराम्" इति । उपलक्षणं द्रव्याष्टकं गृह्यते । किंलक्षणा सुमतिः पूज्या पूजनीया भवभीतैः । पुनः शांतिः । शं सुखं अन्तो अन्तिके यस्याः सा शांतिः । अनन्त-चतुष्टयसुखमया । पुनः मल्लिः सिंहभवे रत्नत्रयं मल्लते बिभर्ति मल्लिः । किंविशिष्टस्त्वं जिनपतिः । जिनश्चासौ पतिश्च जिनपतिः । अथवा जिनानां गौतमाद्येकादशगणानां पतिः जिनपतिः । पुनः उ अहो हर्यंकः । हरिः सिंहो अंके यस्य स हर्यंकः । पुनः पुष्पदंतः । पुष्पतः कामस्यान्तो विनाशो यस्मादिति पुष्पदन्तः अविवाहितत्वात् । अथवा उ उरो विमल इत्यत्र विमल इति सम्बोधनम् । उ वितर्के । अर इति अत्र योज्यम् । पुनः अरः नास्ति रा रमणी यस्य सोरः । पुनः अकुश्रीसुपार्श्वः । अकुश्रियाः कुटिललक्ष्म्याः ईर्निषेधः सु-पार्श्वे यस्य सोकुश्रीसुपार्श्वः । संसृतिलक्ष्मीं परित्यज्य मोक्षलक्ष्मीं जिघृक्षुः । पुनः विभुः परमेष्ठी । पुनः उप्यजांकः । उपयः वितर्क-समुद्राः सप्तभंगीतरंगावलीलीलावन्तः । ते च ते अजा महामुनयः इति उप्यजास्तेऽके समीपे यस्य स उप्यजांकः । भूयः नेमिः । नीयन्ते प्राप्यन्ते सुरनरोरगेन्द्राणां विभूति प्राणिनो धर्मपरा येना-सौ नेमिः । भूयः नमिः हिंसादिरहितः उकारश्च्युतोत्र ।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतानेकाक्षरप्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्ति-मुख्यकवीन्द्रजगन्नाथकृतायां चतुर्विंशजिनस्य श्रीवर्द्धमानस्य स्तोत्रं समाप्तमिति

चतुर्विंशार्थश्च समाप्तः ॥

अब आगे चौवीसवें तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः–अथ जिनपतिः हर्यंकः पुष्पदन्तः अरः अक्श्रीसुपार्श्वः विभुः उप्यजांकः नेमिः नमिः सन् श्रीजगन्न श्रेय अन् श्रीव उनृषभ श्रीद्रुम अंक उ उधधर्म मुनिसुव्रतजिन (अमुनिसुव्रतजिन) पद्म-प्रभ अरोविमल वर्द्धमाने असा तव पूज्या शान्तिः मल्लिः सुमतिः आस ऊनं मा अवतु। अथवा धीरं ऊनं मां तु अव।

अर्थ– अथ शब्दसे अन्तिम मंगल करते हैं। जो भगवान् वर्द्धमान स्वामी जिनपति हैं। जिन शब्दका अर्थ रत्नत्रयको धारण करनेवाले गृ-हस्थ व मुनि है। उनके जो पति हों उनको जिनपति कहते हैं। अथवा जो गणधरोंके स्वामी हों उनको जिनपति कहते हैं। भगवान् वर्द्धमान स्वामी भी गौतम आदि ग्यारह गणधरोंके स्वामी हैं अथवा वे श्रावक मुनि सबके स्वामी हैं इसलिये वे जिनपति कहे जाते हैं। जो भगवान् उ अर्थात् आश्चर्य है कि हर्यंक कहलाते हैं। हरि शब्दका अर्थ सिंह है। जिनके चरणोंमें सिंहका चिन्ह हो उनको हर्यंक कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामीके सिंहका चिन्ह है इसलिये उनको हर्यंक कहते हैं। फिर जो भगवान् पुष्पदन्त हैं। जो स्त्रियोंमें रहकर पुष्ट हो ऐसे कामदेवको पुष्पत् कहते हैं। अन्त शब्दका अर्थ नाश है। जिनसे कामदेवका नाश हो उनको पुष्पदन्त कहते हैं। भगवान् महावीरने कुमार अवस्थामें ही दीक्षा धारण की है और अपना विवाह नहीं क-राया था। इसप्रकार कामदेवका नाश किया था इसलिये उनको पुष्प-दन्त कहते हैं। फिर जो भगवान् अर हैं। जिनके स्त्री न हो उनको अर कहते हैं। यहांपर ' उरो विमल ' संबोधनमें हे विमल इतना ही संबोधन रक्खा तथा उ शब्दका अर्थ वितर्क वा और किया और फिर अर विशेषण भगवानका लगाया। फिर जो भगवान् अकश्रीसुपार्श्व हैं। अक शब्दका अर्थ कुटिल गमन करना है। श्री शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। इ शब्द का अर्थ निषेध है। अक अर्थात कुटिल रीतिसे गमन करनेवाली श्री अर्थात् लक्ष्मीको अकश्री कहते हैं। जिनके समीपमें

कुटिल रीतिसे गमन करनेवाली संसारकी लक्ष्मीका ई अर्थात निषेध हो उनको अकश्रीसुपार्श्व कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामीने संसार की लक्ष्मीका त्याग कर मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त की है इसलिये उनको अक्-श्रीसुपार्श्व कहते हैं। फिर जो भगवान् विभु हैं परमेष्ठी हैं सबसे उत्तम सिद्ध पदमें विराजमान हैं। फिर जो भगवान् उप्यजांक हैं । उ शब्दका अर्थ तर्क वितर्क है। पि शब्दका अर्थ समुद्र है। अज शब्द का अर्थ जन्ममरणसे रहित होनेवाले महामुनि है। जिनका पि अर्थात् शास्त्ररूपी समुद्र उ अर्थात् तर्क वितर्क वा सप्तभंगरूप तरंगोंसे परिपूर्ण हो ऐसे अज अर्थात् महामुनियोंको उप्यज कहते हैं। ऐसे महामुनि जिनके समीप हों उनको उप्यजांक कहते हैं। फिर जो भगवान् नेमि हैं। जिनसे प्राप्त हो उनको नेमि कहते हैं। धर्म में तत्पर रहनेवाले प्राणी भगवान् महावीर की स्तुति भक्ति कर इन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र आदि की महाविभूतियां प्राप्त करते हैं इसलिए उन भगवानको नेमि कहते हैं। फिर जो भगवान् नमि हैं। जो हिंसासे सर्वथा रहित हों उनको नमि कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामी हिंसासे सर्वथा रहित हैं अहिंसा परमो धर्मः के प्रचारक वा उपदेशक हैं इसलिये उनको नमि कहते हैं। फिर जो भगवान् सन् अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं। ऐसे हे भगवन्! हे श्रीजगन्न! जगत शब्दका अर्थ तीनों लोक है और न शब्दका अर्थ नाथ है। जो तीनों लोकोंके नाथ हों उनको जगन्न कहते हैं। जो अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए तीनों लोकोंके स्वामी हों उनको श्रीजगन्न कहते हैं हे श्रेय! आश्रय लेने योग्य! हे अन! समस्त भव्य जीवोंकी रक्षा करने-वाले! हे श्रीव! श्री लक्ष्मीको कहते हैं। और व वर वा स्वामी को कहते हैं। जो लक्ष्मीके स्वामी हों उनको श्रीव कहते हैं। इसलिये उनके संबोधनमें लिखा है हे श्रीव। उ अर्थात् हे - वृषभ! वृषका अर्थ श्रेष्ठ है और भ का अर्थ कान्ति है। जिनकी प्रभा अत्यंत उत्तम हो उनको वृषभ कहते हैं। फिर हे श्रीद्रुम! श्रीद्रुम कल्पवृक्षको कहते

हैं। जो जीवोंको मनोवांछित फल देने के लिये कल्पवृक्षके समान हों उनको श्रीद्रुम कहते हैं। भगवान् की स्तुति भक्तिसे भी मनकी सब अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं इसलिये उनको श्रीद्रुम कहते हैं। उन्हींके संबोधनके लिये लिखा है हे श्रीद्रुम! फिर हे अंक! अं शब्दका अर्थ ब्रह्मज्ञान है। और क शब्दका अर्थ कहना है। जो ब्रह्मज्ञान वा परमात्माके स्वरूपको निरूपण करें उनको अंक कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामीने भी परमात्माके स्वरूपका निरूपण किया है इसलिये उनको अंक कहते हैं। उन्हींके संबोधनमें हे अंक लिखा है। फिर उ का अर्थ अहो वा हे है। हे उथधर्म। जिनका धर्म वा स्वभाव समुद्रके समान अत्यंत गंभीर हो उनको उथधर्म कहते हैं। भगवान महावीरस्वामी का स्वभाव वा ज्ञान भी अत्यंत गंभीर और अनन्त है इसलिये उनको उथधर्म कहते हैं। उन्हींके सम्बोधनके लिये हे उथधर्म लिखा है। फिर हे मुनिसुव्रतजिन! मुनिका अर्थ निर्ग्रंथ साधु है। सुव्रतका अर्थ घिरे रहना है और जिनका अर्थ सम्यग्दृष्टी है। जिनके समवसरणमें सम्यग्दृष्टी भव्य जीव मुनियोंके साथ विराजमान हों उनको मुनिसुव्रत कहते हैं। भगवान महावीर स्वामीके समवसरणमें भी मुनि श्रावक आदि सब थे इसलिये उनको मुनिसुव्रतजिन कहते हैं। उन्हींके संबोधनमें हे मुनिसुव्रत जिन लिखा है। अथवा हे अमुनिसुव्रतजिन! अ का अर्थ नहीं है। मु का अर्थ बंधन वा कर्मोंका बंधन है। जिनके कर्मोंका बंधन न हो उनको अमु कहते हैं। भगवान महावीर स्वामीके समवसरणमें सब पुराणोंकी कथाओंके नायक राजा श्रेणिक थे। उन्होंने अनेक प्रश्न पूछकर सबके जीवनचरित्र सुने थे तथा वे शुद्ध सम्यग्दृष्टी थे और होनहार तीर्थंकर थे इसलिये वे दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबंधी कर्मोंके बंधनसे सर्वथा रहित थे। अतएव प्रकरण वशसे यहांपर उन्हींको अमु कहते हैं। तथा नि का अर्थ अतिशय वा अच्छी तरह है। सुव्रतका अर्थ घिरे रहना है और जिनका अर्थ गणधर है। जिनके गणधर देव अमु अर्थात् राजा श्रेणिकके साथ नि अर्थात् अच्छी तरह विराजमान हों उनको

श्रमुनिसुव्रतजिन कहते हैं। भगवान महावीर स्वामीके समवसरणमें श्री गणधरदेव राजा श्रेणिकके साथ विराजमान थे इसलिये भगवानको श्रमुनि-सुव्रतजिन कहते हैं। उन्हींके संबोधनमें हे श्रमुनिसुव्रतजिन लिखा है। फिर हे पद्मप्रभ! पद् का अर्थ प्राप्त होना है और मा का अर्थ लक्ष्मी है। जिसमें मा अर्थात् लक्ष्मीकी पद् अर्थात् प्राप्ति हो ऐसे सुवर्णको पद्म कहते हैं जिसकी प्रभा सुवर्णके समान हो उनको पद्मप्रभ कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामीके शरीरकी कांति भी सुवर्णके समान है। इसलिये उनको पद्मप्रभ कहते हैं। उन्हींके संबोधनमें लिखा है हे पद्मप्रभ! फिर हे उरोविमल! जो उर अर्थात् हृदयसे विमल अर्थात् अत्यंत निर्मल हों उनको उरोविमल कहते हैं। भगवान् का आत्मा भी अत्यंत निर्मल है इसलिये उनको उरोविमल कहते हैं उन्हींके संबोधनमें लिखा है हे उरोविमल! लिखा भी है "त्वं जिन गतमदमायः" अर्थात् हे प्रभो आप माया मद आदि सब दोषोंसे रहित हैं। ऐसे हे वर्द्धमान वीरनाथ चौबीसवें तीर्थंकर! आप सदा असा अर्थात् सुशोभित होते रहें। अथवा आप विजयशील होते रहें। (दीप्ति और आदान अर्थमें रहनेवाले अस धातुका लोटका मध्यमपुरुषका रूप है) उ चकारके अर्थमें आया है। उ अर्थात् और, तव अर्थात् आपकी सुमति अर्थात् सुशोभित बुद्धि आस अर्थात् थी। आपका निर्मल ज्ञान अत्यंत सुंदर था। आपकी वह सुमति कैसी है। पुज्या अर्थात् पूजनीय है। संसारसे भयभीत हुए मनुष्य सदा उसकी पूजा करते रहते हैं। फिर वह सुमति शान्ति है। श सुखको कहते हैं। और अंति समीप को कहते हैं। जिसके समीपमें अनंत सुख हो उसको शांति कहते हैं। आपका वह ज्ञान अनंत चतुष्टयरूप सुखमें निमग्न है। फिर वह सुमति मल्लि है। मल्ल धातुका अर्थ धारण करना है। जो रत्नत्रयको धारण करे उसको मल्लि कहते हैं। भगवान् महावीर स्वामीके जीवने सिंहके भवमें रत्नत्रय धारण किया था इसलिये उनकी सुबुद्धिको मल्लि कहते हैं। हे भगवान् ऐसी

आपकी सुमति पापोंकी आस अर्थात् नाश करनेवाली है। (अस् धातुका अर्थ क्षेपण करना वा फेंक देना अर्थात् नाश कर देना है । उसीका आस बना है ।) अथवा हे भगवन् ! ऐसी आपकी सुमति आस अर्थात दैदिप्यमान है । इसीलिये हे प्रभो ! आपका दूसरा नाम सन्मति अर्थात श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाला है । हे प्रभो आपकी सुमति ऐसी है इसलिये अवश्य आप मेरी इस संसारसे रक्षा कीजिये । मैं कैसा हूं? ऊन अर्थात् मनुष्य पर्यायको धारण करनेवाला हूं। और धीर हूं । धी का अर्थ बुद्धि है और ईर धातुका अर्थ धारण करना है। जो आपके विषयमें अपनी बुद्धिको धारण करे उसको धीर कहते हैं । अथवा धी अर्थात् अमृतके समान निर्मल जलसे जो इरा अर्थात् पूजा करे—जो क्षीरसागरके समान निर्मल जलसे पूजा करे उसको धीर कहते हैं। मैं भी आपकी ही भक्ति करता हूं आपकी ही जलादि द्रव्योंसे पूजा करता हूं इसलिये मैं धीर हूं। लिखा भी है "व्योमापगाद्युत्तम-तीर्थवाराम्" अर्थात् आकाशगंगा आदि के उत्तम तीर्थ जलसे हे भगवान् आपकी पूजा करता हूं । हे भगवन् ऐसे मुझ पंडित जगन्नाथ को आप इस संसारके पापोंसे बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये ।

यह श्लोक उकारच्युत है। श्रीवासुपूज्य शब्दमें श्रीव आस पूज्य ऐसे पदच्छेद किये हैं। आसुमें उ को छोडकर अर्थ किया है। इसलिये इस श्लोकको उकारच्युत कहते हैं।

इस प्रकार भट्टारक श्रीनरेन्द्रकीर्तिके मुख्य शिष्य कविराज पंडित जगन्नाथविरचित एकाक्षर प्रकाशिका नामकी श्री चौबीसो तीर्थंकर की स्तुतिमें चावली [आगरा] निवासी लालाराम शास्त्री द्वारा विरचित भाषा टीका में चौवीसवें तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामी की स्तुति समाप्त हुई ।

तथा

काव्यका चौवीसवां अर्थ समाप्त हुआ ।

अथ समुदाये चतुर्विंशतिजिनान् सत्कृत्य तोष्टवीमि.

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोथधर्मो,
हर्यंकः पुष्पदंतो मुनिसुव्रतजिनोनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ।

टीका—निःशेषविघ्नवारणार्थं अन्त्यमंगलविधानसूचकं महापद्य ज्ञात्वा श्रीसरस्वतीभिः मज्जननीभिः कृपानिधिभिः सर्वत्र विजयकर्त्रीभिः श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतिकाव्यचमत्कारेणाहं उपदिष्ट इव । पुत्र पूर्वमर्थास्त्वया कृतास्ते तु पण्डितैरेव ज्ञातुं शक्या अन्ये भव्यजना अपि तव कृतिं स्मरन्तीति भव्यकृपया सरस्वतीभिः पुनरुपदिष्ट इवाहं ब्रवीमि एकपद्येन चतुर्विंशतिस्तुतिम् ।

तथाहि—वृषभजिनपतिः श्रीयुगादिदेवः मां श्रीजगन्नाथधीरमवतु । ततः श्री हर्यंकः । हरिः हस्ती अंके यस्य स हर्यंकः द्वितीयतीर्थंकरः श्रीमदजितनाथः मां श्रीजगन्नाथधीरमपि अवतु । अथवा यः कोपि पठति स वदति मां पठन्तं कञ्चित्पुरुषं । अपिशब्दोत्र चकारार्थे । च पुनः श्रीजगन्नाथनामानं पण्डितं काव्यकर्तारं अवतात् । एवं सर्वत्र योज्यम् । ततः हर्यंकः शम्भवनाथस्तृतीयस्तीर्थपतिः । ततः हर्य्यंकः हरिः कपिः अंके यस्य स हर्यंकः अभिनंदनदेवः । ततः सुमतिः सुमतिनाथनामा पञ्चमजिनदेवः । ततः पद्मप्रभः पद्मप्रभनामा षष्ठजिनेट् । ततः श्रीसुपार्श्वः श्रीसुपार्श्वाभिधः सप्तमजिनः । ततः हर्यंकः हरिश्चन्द्रोऽके यस्य स हर्यंकः चन्द्रलाञ्छनः चन्द्रप्रभः जिनदेवः अष्टमः । ततः पुष्पदन्तः । पुष्पदन्तनामा नवमजिनदेवः । ततः श्रीद्रुमांकः श्रीद्रुमः कल्पवृक्षः अंके यस्य स श्रीद्रुमांकः । शीतलनाथनामा दशमजिननायकः । ततः श्रेयान् एकादशजिनपरिवृढः । ततः श्रीवासुपूज्यः । वासुपूज्यनामा द्वादशजिनविभुः । ततो विमलविभुः विमलनाथ-

नामा त्रयोदशजिनेश्वरः। ततः अनन्तवाक् अनन्तनाथनामा चतुर्दशजिनः। ततः धर्मः श्रीधर्मनाथनामा पञ्चदशजिनेशः। ततः शान्तिः शान्तिनाथनामा षोडशजिनशासिता। ततः अजांकः अजश्छागोऽके यस्य स अजांकः कुंथुनाथः सप्तदशः। ततः अरः अरनाथः अष्टादशजिनपः। ततः मल्लिः मल्लिनाथः एकोनविंशः। ततः मुनिसुव्रतजिनः विंशस्तीर्थंकरः। सुव्रत इत्यत्र समर्थनसुक्तमेव। ततः नमिः नमिनाथ एकविंशः। ततः नेमिः नेमिनाथ द्वाविंशः। ततः हर्यंकः हरिः सर्पो धरणेन्द्रोऽके यस्य स हर्यंकः श्रीपार्श्वनाथः। ततः हर्यंकः सिंहांकः वीरनाथः अथवा वर्द्धमानः वर्द्धमाननामा चतुर्विंशजिनः। श्रीजगन्नाथधीरमपि अवतात् मां च। अत्र पद्ये स्रग्धरा छन्दः। " म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनसमुदायस्तुतौ भट्टारकश्रीनरेंद्रकीर्तिमुख्यशिष्य कवीन्द्रजगन्नाथविरचितायां समुदायस्तुतिः समाप्ता॥

अब आगे समुदायरूपसे एकसाथ चौबीसों तीर्थंकरोंकी स्तुति करते हैं।

अन्वयः—असौ वृषभजिनपतिः हर्यंकः अपि हर्यंकः हर्यंकः सुमतिः पद्मप्रभः श्रीसुपार्श्वः हर्यंकः पुष्पदन्तः श्रीद्रुमांकः श्रेयान् श्रीवासुपूज्यः विमलविभुः अनन्तवाक् धर्मः शान्तिः अजांकः अरः मल्लिः मुनिसुव्रतजिनः नमिः नेमिः हर्यंकः हर्यंकः अथवा वर्द्धमानः मां श्रीजगन्नाथधीरं अवतु।

अर्थ—यह महाग्ध अथवा महाश्लोक समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाला और अंतिम मंगल की सूचना देनेवाला है। यही समझकर सर्वत्र विजय करनेवाली और अत्यंत दयालु ऐसी मेरी माता श्रीसरस्वती देवीने चौबीसो तीर्थंकरोंकी स्तुति करनेवाले इस काव्यके चमत्कारको देखकर मानो मुझे उपदेश दिया कि हे पुत्र तूने इस महाश्लोकके जो अर्थ पहले किये हैं उन्हें तो विद्वान लोग ही जान सकते हैं। अन्य साधारण भव्य जीव नहीं जान सकते। परंतु अन्य साधारण भव्य जीवोंको भी तेरी इस कृतिका—तेरे इस काव्यका अथवा तेरी इस

स्तुतिका स्मरण होना चाहिये। उनको भी इसका अर्थ अवश्य मालूम होना चाहिये। इस प्रकार भव्य जीवोंपर कृपा करनेवाली सरस्वती देवीने मानों मुझे उपदेश दिया। उसी उपदेशके अनुसार मैं इस एक ही श्लोक से चौबीसों तीर्थंकर की स्तुति करता हूं।

श्री वृषभजिनपति अर्थात् इस युगके आदिदेव भगवान् वृषभदेव [illegible] पंडित जगन्नाथकी र[illegible] करो। तदनंतर श्री हर्यंक अर्थात् हरि अर्थात् हाथीका अंक अर्थात् चिन्ह धारण करने वाले भगवान् अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर मुझ पंडित जगन्नाथ की रक्षा करो। अथवा पढनेवाला कहता है कि मेरी रक्षा करो। और इस काव्यके बनानेवाले विद्वद्वर पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। फिर हर्यंक हरि शब्दका अर्थ घोडा और अंकका अर्थ चिन्ह, घोडेके चिन्हको धारण करनेवाले भगवान् शंभवनाथ स्वामी तीसरे तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। तदनंतर हर्यंक–हरि शब्दका अर्थ बंदर और अंक का अर्थ चिन्ह। जिनके चरणकमलोंमें बंदरका चिन्ह है ऐसे श्री अभिनन्दन स्वामी चौथे तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथ की रक्षा करो। फिर सुमति अर्थात् सुमति नाथ पांचवें तीर्थंकर, पद्मप्रभ नामके छठे तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। फिर श्रीसुपार्श्वनाथ सातवें तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। फिर हर्यंक–हरि शब्दका अर्थ चन्द्रमा है। और अंक शब्दका अर्थ चिन्ह है। जिनके चरण कमलोंमें चन्द्रमाका चिन्ह है ऐसे श्री चन्द्रप्रभ भगवान् आठवें तीर्थंकर और पुष्पदन्त नामके नौवें तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथ की रक्षा करो। तदनंतर श्रीद्रुमांक– श्रीद्रुमका अर्थ कल्प वृक्ष है। और अंक शब्दका अर्थ चिन्ह है। जिनके चरणकमलोंमें कल्पवृक्षका चिन्ह हो ऐसे श्री शीतलनाथ परमदेव दशवें तीर्थंकर। श्रेयान् अर्थात् श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर, श्रीवासुपूज्य नामके बारहवें तीर्थंकर, विमलविभु अर्थात् विमलनाथ नामके तेरहवें तीर्थंकर, अनन्तवाक् अर्थात् अनन्तनाथ चौदहवें तीर्थंकर, धर्म अर्थात् धर्मनाथ नामके पंद्रहवें तीर्थंकर और शांति अर्थात् शांति-

नाथ नामके सोलहवें तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। फिर अजांक– अज शब्दका अर्थ बकरा है, अंक शब्दका अर्थ चिन्ह है। जिनके चरणकमलोंमें बकरेका चिन्ह हो ऐसे श्रीकुंथुनाथ स्वामी सत्रहवें तीर्थंकर, अर अर्थात् भगवान अरनाथ अठारहवें तीर्थंकर, मल्लि अर्थात् श्रीमल्लिनाथ उनईसवें तीर्थंकर, मुनिसुव्रत जिन अर्थात् भगवान् मुनिसुव्रतनाथ वीसवें तीर्थंकर, नमि अर्थात् श्रीनमिनाथ स्वामी इकईसवें तीर्थंकर और नेमि अर्थात् श्रीनेमिनाथ स्वामी बाईसवें तीर्थंकर मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। इसीप्रकार हर्यंक–हरि शब्दका अर्थ सर्प है और अंक का अर्थ चिन्ह है। जिनके चरणकमलोंमें सर्पका चिन्ह है ऐसे पार्श्वनाथ स्वामी मेरी और पंडित जगन्नाथकी रक्षा करो। तथा हर्यंक–हरि शब्दका अर्थ सिंह है। जिनके चरणकमलोंमें सिंहका चिन्ह हो ऐसे श्रीमहावीर स्वामी अथवा श्रीवर्द्धमान स्वामी चौबीसवें तीर्थंकर इस ग्रंथके मूल और संस्कृत टीकाके रचनेवाले विद्वद्वर महापंडित जगन्नाथकी रक्षा करो और मां अर्थात् मेरी–संस्कृत टीकाके अनुसार हिंदी भाषामें अनुवाद करनेवाले चावली (आगरा) निवासी और देहली प्रवासी [धर्मरत्न] पण्डित लालाराम जैन शास्त्री की रक्षा करो तथा मुझ पढनेवाले की भी रक्षा करो।

इस श्लोकमें स्रग्धरा छंद है। उसका लक्षण यह है " म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् " जिसमें मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण हों और सात सात अक्षरोंके तीन विराम हों उसको स्रग्धरा छंद कहते हैं।

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
SSS	S।S	S।।	।।।	।SS	।SS	।SS

इस प्रकार भट्टारक श्रीनरेंद्रकीर्तिके मुख्यशिष्य कविराजपंडित जगन्नाथविरचित श्रीचौवीसों तीर्थंकरोंकी समुदायस्तुतिमें चावली (आगरा) निवासी लालारामशास्त्रीद्वारा विरचित भाषा टीकामें सबकी समुदायरूप स्तुति समाप्त हुई।

काव्यका पच्चीसवां अर्थ समाप्त हुआ।

अथ प्रशस्तिः ।

नयनयधररूपांके सुवत्से तपोमा—
स इह विशदपञ्चम्यां च सत्सौरिवारे ।
विहितजिनमहोत्रावत्पुरे सौधशुभ्रे
सुजिनतुतिमकार्षीच्छ्रीजगन्नाथनामा ॥

अर्थ–नय नौ हैं इसलिये नय शब्दसे नौ लेते हैं। तथा धर पर्वत-
ो कहते हैं। कुलाचल पर्वत छह हैं इसलिये धर शब्दसे छह लेते हैं।
ौर रूप शब्दसे एक लेते हैं। तथा अंकोंकी गति बाईं ओर को हो-
ी है। इस प्रकार नय नय धर रूपसे १६९९ होते हैं। सम्वत्
६९९ में ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी रविवारके दिन अनेक सुंदर भवनोंसे
ोभित ऐसे अंबावत नामके नगरमें श्री जगन्नाथ नामके विद्वानने भग-
अरहंत देवके महोत्सव पूर्वक यह श्री अरहंत देवकी स्तुति
समाप्त की।

इस प्रकार यह एकाक्षरप्रकाशिका नामकी श्री चौबीसों तीर्थंकर की स्तुति समाप्त हुई।

अब आगे इस काव्यका फल और उसका स्वरूप कहते हैं।

पद्येऽस्मिन् मयका कृतां नुतिमिमां श्रीमच्चतुर्विंशति—
तीर्थेशां कलुषापहां च नितरां नानद्भिरर्थैवरैः।
प्रत्येकं किल वाच्यवाचकवैर्बोध्यां बुधैर्वृत्तितः
पूर्वाह्णादिषु यो ब्रवीति लभते स्थानं जगन्नाथतः।

अर्थ–इस एक ही पद्यमें एक ही श्लोकमें मैंने श्री चौबीसों तीर्थंकरोंकी स्तुति की है तथा इसी एक श्लोकके सुंदर चौबीस ही अर्थ किये हैं। उन चौबीसों अर्थोंमें से प्रत्येक अर्थ उनके वाच्य वाचक शब्दोंके द्वारा विद्वानोंको उसकी टीकाके अनुसार जान लेना चाहिये। इस प्रकार की हुई यह स्तुति समस्त पापोंको नाश करनेवाली है। जो

मनुष्य इसे प्रातःकाल ही पढ़ता है उसे भगवान् अरहंत देवके प्रसादसे परम स्थान प्राप्त होता है ॥ २ ॥

काव्येस्मिन् भुवि कोविदाः स्तुतिमये तीर्थंकराणां वरे
सल्लभ्ये भुवनैकचमत्कृतिकरे चित्तं दधीध्वं सदा
वाक्याऽशुद्धवचोऽपि यद्भणतितः कुर्वीध्वमत्रापि सत्
तस्माच्चित्रमिदं समस्ति सुखदं न ज्ञायते किं फलम् ।

अर्थ— इस काव्यमें चौबीसों तीर्थंकरों की सुंदर स्तुति की गई है तथा यह काव्य संसारके समस्त विद्वानोंके हृदयमें चमत्कार उत्पन्न करने वाला है और भाग्यवान मनुष्योंको ही प्राप्त होनेवाला है। इसलिये विद्वान् लोगो ! तुमको इसमें सदा अपना मन लगाना चाहिये। और किसी वाक्यके द्वारा इसमें कोई अशुद्ध वचन कहा गया हो तो उसे शुद्ध कर लेना चाहिये। यह काव्य संसार भरमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला सुख और सबको सुख देनेवाला है। इसलिये इस काव्यके पढ़ने का [illegible] अनुपम फल है जो किसीको मालूम भी नहीं हो सकता।

जननि भारति सज्जिनतुण्डजे सुसति लोकलतावनतत्परे ।
भव सरस्वति मे कलुषापहा तव पदाम्बुजभक्तियुजः सदा ॥ ५ ॥

अर्थ— भगवान अरहंतदेवके मुखकमलसे प्रगट होनेवाली ! तीनों लोक रूपी लताकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहनेवाली ! हे सती ! भारती ! माता ! सरस्वती ! मैं सदा तेरे चरणकमलोंकी भक्तिमें लगा रहता हूं इसलिये तू मेरे सब पापोंको दूर कर।

इस प्रकार कविराज पण्डित जगन्नाथ विरचित और चावली
(आगरा) निवासी धर्मरत्न लालाराम
शास्त्री द्वारा अनुवादित
यह श्रीचौबीसों तीर्थंकरोंकी स्तुति समाप्त हुई ।